श्रीरामोजयति ।

श्रीरामपटल सटीक

चारों सम्प्रदाय के वैष्णवों की पुरातन पद्धति ।

श्रीअयोध्या-वास्तव्य सर्व सन्त-महन्त-सम्मत

टीकाकार—पं० सर्यूदास वीर वैष्णव

प्रकाशक—छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बुकसेलर, श्रीअयोध्या ।

केसरीदास सेठ, सुपरिंटेंडेंट द्वारा नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ में मुद्रित

संवत् १९८० विक्रमी श्रीरामानन्दाब्द ६२३
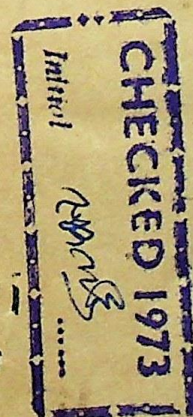
दाम ॥)

श्रीमते रामानन्दाय नमः

प्रस्तावना

माननीय सज्जनो ! इस असार संसार में वैष्णव-धर्म के बराबर कोई दूसरा धर्म नहीं है। इस परम पवित्र वैष्णव-धर्म के विशेष रूप से प्रवर्तक बड़े धुरन्धर चार आचार्य हुए हैं। जो संसार में चारों संप्रदाय के प्रवर्तकाचार्य नाम से प्रसिद्ध हो रहे हैं। इस परमपुनीत वैष्णव-धर्म में प्रधान धर्म "आचार विचार" है। वस्तुतः यह "आचार विचार" सब धर्मों का मूल है। क्योंकि शास्त्र में लिखा है यथा मनुस्मृतौ १ अध्याये।

आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च। तस्मादस्मिन् सदायुक्तोनित्यस्यादात्मवान् द्विजः ॥
आचाराद्विच्युतोविप्रो न वेदफलमश्नुते। आचारेण तु संयुक्तः संपूर्ण फलभाग्भवेत् ॥

"अर्थात् आचारश्चैव साधूनां" इस मनुजी के वचन से साधुओं का जो सदाचार है वही उत्तम धर्म है। यह वेद शास्त्र दूनों में कहा गया है। अतः नित्य कल्याण चाहने वाले ब्राह्मण वेद शास्त्रों में कहे हुए धर्म का यत्नपूर्वक पालन करें। आचारहीन ब्राह्मण वेद के संपूर्ण फलों का भागी नहीं होता है। यदि सदाचार के सहित हो तो वेद के संपूर्ण फलों का भागी होता है। शास्त्रोक्त उत्तम आचरण का नाम है आचार। उसी उत्तम आचरण को जो विचारपूर्वक करे उसको विचार कहते हैं। उदाहरण, जैसे डोलडाल होकर हाथ पैर की शुद्धि करना यह तो आचार है और शुद्ध मृत्तिका को खंती से खोद कर लाना उस से हाथ पैर की शुद्धि करना यह विचार है। यदि शास्त्र प्रमाण से एक बार लिंग में, ५ बार गुदा में, तीन २ बार दूनों पैर में, १० बार एक हाथ में, ७ बार दूनों हाथों में मृत्तिका लगावे। यदि विचार पूर्वक शुद्ध मृत्तिका खोद कर न लावे अशुद्धही मृत्तिका से शुद्धि करे तो यह सब भ्रष्ट होगया वे शुद्धि करने के

फल को नहीं पा सकते हैं। इसी प्रकार सब कर्मों के विषय में विचारपूर्वक करना ही उत्तम आचार है। इसी को हमारे साधुओं में 'टकसार' कहते हैं। अब आचार विचार की रीति बहुत ही बिगड़ गई है। और दिन २ बिगड़ती जाती है। इस का कारण यही है कि अब हमारे में पटल पद्धति का पठन पाठन सर्वथा छूट गया है। प्रथम महात्मा लोग जिसको शिष्य करते रहे। उन को रामपटल पढ़ाकर सब कर्म, धर्म, रीति, भांति तथा धाम क्षेत्र पंच संस्कार बताकर कह देते रहे कि "बच्चा अब जा चारों धाम घूम कर आव" जब वे चारों धाम घूम कर आ जाते रहे तब रसोई पूजादि सेवा में भरती करते रहे। चारों धाम घूमने से क्या होता रहा? एक तो तीर्थों में घूमने से अंतःकरण की शुद्धि होती रही। दूसरे संतों के बीच में रहने से बोली, चाली, रीति, भांति सब सुधर जाती रही और अंत में कल्याण होता रहा। तीसरी बात देश, काल देखने से और दुःख सुख भोगने से परमार्थी होते रहे। फिर कहीं लिप्त नहीं होते रहे। इत्यादि अनेक लाभ होते रहे। अब यह रीति छूट गई। रामपटल कोई पढ़ते ही नहीं। यदि पढ़ते हैं तो विद्या के अभाव से अर्थ नहीं समझते हैं। इस लिए बहुत सज्जनों के कहने से भाषा टीका करनी पड़ी। जिससे कि सब सज्जन लोग श्री रामपटल का भाव सहज में समझ जावें। सज्जनों से विशेष प्रार्थना यह है कि कहीं कहीं पाठ की गड़बड़ी रही सो संवत् १९३९ की लिखी हुई पुस्तक से सुधार दी गई है। और बहुत से शास्त्रोक्त विषय जो कि वैष्णवों के लिए परमोपयोगी समझा उसे मिला दिया है। इस से ग्रंथ देखने योग्य होगया है। जहां कहीं किसी प्रकार की गलती रहगई हो उसके लिए क्षमा करेंगे। अंतिम एक प्रार्थना यह भी है कि इस श्रीरामपटल को विशेषरूप से साधुओं में सर्वत्र प्रचार करना चाहिए। इत्यलम्।

पापमोचन घाट श्रीअयोध्याजी
श्रावण शु० ३ सं० १९७९ ई०

सब सज्जनों का दासानुदास
सरयूदास।

श्रीमतेरामानन्दाय नमः

अथ श्रीरामपटल सटीक प्रारम्भः
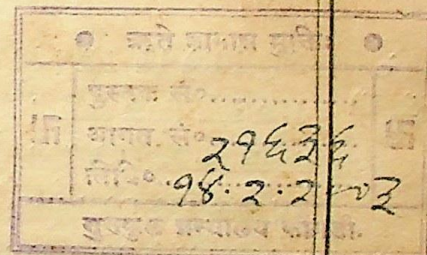
अथ मंगलाचरणम्

अमलकमलनेत्रं जानकीप्रेमपात्रं सजलजलदगात्रं पीतवस्त्रं दधानम्।
उरसि वनजमालं कौस्तुभासक्तकण्ठं स्मितरुचिरविकासं रामचन्द्रं भजेऽहम्॥
रामानन्दमहं वन्दे योगिध्येयांघ्रिपंकजम्। उदारयशसं देवं शान्तमूर्तिं शुभप्रदम्॥
रामानन्दं च निम्बार्कं माधवं विष्णुस्वामिनम्। एतान् भागवताचार्यान् प्रणमामि पुनः पुनः॥

दोहा।

रामानन्द जगतगुरु निम्बादित्य महान। विष्णुस्वामि गुणखानि पुनि माधव परम सुजान॥
तिनके पदरज शीश धरि रामपटल जेहि नाम। करौं तासु भाषातिलक सकल साधु सुखधाम॥

वार्तिक।

साधु सब रात दिन भजन करते हैं। यदि कोई कहे कि जब साधु लोग सो जाते हैं तब कैसे भजन करते हैं। तो सुनो, साधु लोग जब सोने लगते हैं तब श्रीसंतगुरु और भगवत का स्मरण करके सोते हैं। और जब उठते हैं तब फिर भगवद्भजन करने लगते हैं। इससे संत का सोना भी भजन करने ही के समान है। क्योंकि "जागत सोवत शरण तुम्हारी" लिखा है। इसी पर एक वार्ता है। एक संत सोते रहे। किसी गृहस्थ ने कहा कि "साधु लोग खाकर खूब सोते हैं, भजन नहीं करते हैं।" यह सुनकर एक संत बोले कि "साधु भी कहीं सोते हैं, सोती है दुनिया।" कहने का भाव है यह कि "मोह निशा सब सोवनि हारा। देखहिं सपन अनेक प्रकारा॥ यहि जग जामिनि जागहिं योगी। विरति विरंचि प्रपंच वियोगी॥" पुनः गीतायां २ अध्याये—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

इन सिद्धांतों के अनुकूल संत के वचनों के तात्पर्य न समझकर गृहस्थ ने दलील किया। संत बोले "तुम उठाकर देखो सोते हैं कि जागते हैं।" जब उठाए गए तब संत उठते ही श्रीविभीषणजी की तरह "राम राम तेहि सुमिरन लागे" श्रीसीताराम सीताराम कहने लगे। संत बोले "देखा, यदि भजन न करते होते तो उठते ही नामोच्चारण क्यों करते।" इसलिए संत लोग खाते, पीते, उठते, बैठते, सोते, अर्थात् सर्वदा निरन्तर भजन ही किया करते हैं। इस गूढ़ वचन को सुनकर गृहस्थ संत के चरणों पर गिरकर बोले "भगवन्! संतों के रहस्य अद्भुत होते हैं। कृपा करके कुछ और उपदेश कीजिए।" संत बोले—शीतकाल का समय रहा। एक संत आनन्द से धूप में बैठे रहे। संत का स्वाभाविक

अकिञ्चन रूप देखकर एक राजा बोला कि "आपकी रात कैसे कटती है?" संत बोले "कुछ तो तेरे समान कटती है, कुछ तुझसे अच्छी।" राजा बोला "मेरे समान कैसे कटती है और मुझसे अधिक कैसे?" संत बोले "निद्रा आने पर जैसे तुमको कुछ खबर नहीं रहती है कि मैं पलंग पर शयन किया हूं अथवा ज़मीन पर। उसी प्रकार निद्रा आने पर हमको भी स्मरण नहीं रहता कि मैं कहां पड़ा हूं। यह तो तेरे समान कटता है। और तुझसे विशेषता यह है कि तू जब जागता है तो 'गृह कारज नाना जंजाल' में वृथा मूड़ मारता है और लोगों को दुःख देता है। और मैं जब जागता हूं तब भगवत्स्मरण करता हूं। यह हमारी तुमसे विशेषता है।" यह सुनकर राजा को ज्ञान हो गया। महात्मा का शिष्य होकर भजन करने लगा। कहने का तात्पर्य्य यह है कि संत लोग जब सोते हैं तब भगवत का स्मरण करके सोते हैं। और जब उठते हैं तब फिर भगवद्भजन करते हैं। इसीलिए श्रीरामपटल में यह श्लोक प्रथम ही लिखा है। यथा—

ज्ञानमुद्राधरं रामं सच्चिदानन्द विग्रहम्। ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद्रघुनन्दनम्॥

अर्थात् ब्रह्ममुहूर्त भाव ४ बजे सवेरे उठकर नित्य नियम से ज्ञानमुद्रा के धारण करनेवाले सच्चिदानन्द स्वरूप पर-ब्रह्म श्रीरामरघुनन्दन को चिन्तवन करे। इसीलिए हमारे पूज्यचरण श्रीविश्वामित्रजी महाराज ने प्रातःस्तव पांच श्लोकों में बनाया है। जिसको सब ऋषि मुनि लोग प्रातःकाल उठकर पाठ करते रहे। इससे सब साधुओं को चाहिए कि इन पांच श्लोकों को सवेरे उठकर स्मरण किया करें।

तथा प्रातस्स्तवः।

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम्। कर्णावलम्बि-

चलकुण्डलशोभिगण्डं कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम् ॥ १ ॥ प्रातर्नमामि रघुनाथपदारविन्दं वज्रांकुशादिशुभरेखिसुखावहं मे । योगीन्द्रमानसमधुव्रतसेव्यमानं शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः ॥ २ ॥ प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्द् रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः । यद्राजसंसदि विभज्य महेशचापं सीताकरग्रहणमंगलमाप सद्यः ॥ ३ ॥ प्रातःश्रयेश्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिं नीलाम्बुदोत्पलसितेतररत्ननीलम् । आमुक्त मौक्तिक विशेषविभूषणाढ्यां ध्येयां समस्तमुनिभिर्निजमुक्तिहेतुम् ॥ ४ ॥ प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम वाग्दोषहारिसकलं शमलं निहन्तृ । यत्पार्वतीस्वपतिना सहभोक्तुकामा भक्त्या सहस्रहरिनामसमं जजाप ॥ ५ ॥ यः श्लोकपंचकमिदं मनुजः पठेत नित्यं प्रभातसमये नियतः प्रबुद्धः । श्रीरामकिंकरजनेषु स एव मुख्यो भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णस्तवः ।

कृष्णाय यादवेन्द्राय ज्ञानमुद्राय योगिने । नाथाय रुक्मिणीशाय नमो वेदान्तवेदिने ॥ १ ॥ जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशःप्रदीपः । जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलांगो जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥ २ ॥ कृष्ण त्वदीय पदपंकज-

पंजरान्ते अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः । प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधन-

पंजरान्ते अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः। प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधन-विधौ स्मरणं कुतस्ते ॥ ३॥ जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरं पाणिद्वन्द्व समर्चया-च्युतकथां श्रोत्रद्वय त्वं शृणु। कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छांघ्रियुग्मालयं जिघ्रघ्राण मुकुन्द-पादतुलसीं मूर्द्धन्नमाऽधोक्षजम् ॥ ४ ॥ कृष्णो रक्षतु नो जगत्त्रयगुरुः कृष्णं नमध्वं सदा कृष्णे-नाखिलशत्रवोविनिहताः कृष्णाय तस्मै नमः। कृष्णादेवसमुत्थितं जगदिदं कृष्णस्य दासो-स्म्यहं कृष्णे तिष्ठति विश्वमेतदखिलं हे कृष्ण रक्षस्व माम् ॥ ५ ॥

इत्यादि श्लोकों को श्रीरामकृष्ण के भक्त साधु महात्मा स्मरण करके प्रातःकाल का कृत्य करें। प्रथम संत सब चार बजे सवेरे ही स्नान करते रहे। जो सवेरे उठकर नहीं नहाते रहे उनको संत सब वचन मारते रहे। अब तो यह टकसार ही कमती हो गई, क्योंकि "आलसी योगी पृथिवी का भार" जब जिसकी इच्छा हो जागें चाहै न जागें, स्नान करें चाहै न करें, कोई पूछनेवाला नहीं है। सो नहीं चाहिये। प्रातःकाल उठकर अवश्य नहाना चाहिये, यह ऋषियों मुनियों का सम्मत है। यथा दक्षस्मृतौ—

प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी भवेत्सदा। सप्तजन्मकृतं पापं त्रिभिर्वर्षै व्यपोहति ॥
प्रातःस्नानं प्रशंसंति दृष्टादृष्टकरं हि तत्। सर्वमर्हति पूतात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥

गुणादशस्नान परस्य साधो रूपं च पुष्टिश्च बलं च तेजः । आरोग्यमायुश्च मनोऽनुरुद्ध दुःस्वप्नधातुश्च तपश्च मेधा ॥

अर्थात् प्रातःकाल उठकर जो ब्राह्मण सर्वदा प्रातःकाल के स्नान करनेवाला हो वह तीन वर्ष के स्नान से सात जन्म के पापों को नाश करता है । प्रातःस्नान को गुप्त प्रगटवाले सब ही प्रशंसा करते हैं क्योंकि प्रातःस्नान करनेवाले मनुष्य पवित्र होकर जप पूजादिक सब क्रिया के अधिकारी होते हैं। प्रातःकाल के स्नान में दश गुण साधु सब कहते हैं सो देखाते हैं। रूप १ पुष्टि २ बल ३ तेज ४ आरोग्यता ५ आयु की वृद्धि ६ मन वश में होना ७ खराब स्वप्न न होना, धातु की वृद्धि ८ तप की वृद्धि ९ और बुद्धि की वृद्धि यह १० गुण होते हैं। इसलिए सवेरे गजरदम उठकर नहाना चाहिये। जो नहीं नहावें उनको उपदेश देना चाहिये। तत्रादौ प्रथम हाथ जोड़कर पृथ्वी से प्रार्थना करनी चाहिये।

प्रार्थना मंत्रः।

ॐसमुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले । विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

इति पृथ्वीं सम्प्रार्थ्य श्रीमान्साधकेन्द्रो दक्षिणांगेन समुत्थाय श्वासानुसारेण तस्यां पादौ निधाय शौचाय व्रजेत् ॥

अर्थात् सातों समुद्र जिनकी मेखला नाम कटीसूत्र (कर्धनी) है। पर्वत सब स्तनमण्डल है। ऐसी विष्णुभगवान् की पत्नी (स्त्री) हे पृथ्वी देवि ! आपको नमस्कार है। मेरे पग स्पर्श करने का दोष क्षमा करना। यह कहकर साधक दक्षिण (दाहिनी) करवट से उठकर श्वासानुसार प्रथम दाहिना पद फिर वामा पद धरकर शौच के लिये जावे।

गत्वा तीर्थोदकं तत्र निक्षिप्य स्नानसाधनम्। अथ शौचादिकं कर्तुमाहरेन्मृत्तिकां बुधः॥ १॥

गत्वा तीर्थोदकं तत्र निक्षिप्य स्नानसाधनम् । अथ शौचादिकं कर्तुमाहरेन्मृत्तिकां बुधः ॥ १ ॥

मृत्तिकाहरण मंत्रः ।

येन त्वां खनति ब्रह्मा येन त्वां रुद्रकेशवौ । तेन त्वाहं खनिष्यामि शुद्ध्यर्थं करपादयोः ॥

प्रथम किसी पुण्य तड़ाग वा नदी तीर्थादिकों में जाकर स्नान साधन अर्थात् रेशमी वस्त्रादि वहां धारण कर फिर शौच के लिये बुद्धिमान् मृत्तिका लावे । मंत्र का अर्थ यह है कि जिसके लिए ब्रह्मा विष्णु और महादेवजी आपको खोदते हैं उसी तरह हाथ पैर की शुद्धि के लिये मैं भी आपको खोदता हूं । यह कहकर मृत्तिका लेनी चाहिये । उस मृत्तिका के तीन भाग करना चाहिये । पुलस्त्यसंहिता में मृत्तिका की विधि ऐसी लिखी है । यथा—

मृद्गौरा ब्राह्मणानां च वैष्णवानां विशेषतः । नृपाणां लोहिता ज्ञेया वैश्यानां तु हरिच्छुभा ॥
स्त्रीशूद्राणामंत्यजानां कृष्णवर्णा प्रकीर्तिता ॥

अर्थात् ब्राह्मण वैष्णवों के लिये विशेष करके गौर मृत्तिका, क्षत्रियों के लिये लोहित वर्ण की, वैश्यों के लिये हरित वर्ण की मृत्तिका शुभदायक है और स्त्री शूद्रों को तथा अंत्यज (नीच) जातियों को कृष्ण (काली) मृत्तिका कहा है । पुनः सरोजगलिका में ऐसा लिखा है । यथा—

विना काष्ठेन लोहेन उद्धृताया च मृत्तिका । श्वानविष्ठासमाज्ञेया शौचकाले विवर्जयेत् ॥
पूर्वं संप्रार्थ्य पृथिवीं नित्यं वै मंत्रपूर्वकम् । शुद्धमृत्तिकामानीय त्रिभागं कारयेद्बुधः ॥
आद्यं लिंगे गुदे देशे द्वितीयं करपादयोः । तृतीयं भागमादाय स्नानकाले प्रलेपयेत् ॥

अर्थात् विना काष्ट लोहा से खोदी मृत्तिका को श्वानविष्ठा के समान जानना चाहिए। उसको शौचकाल में त्याग देवे। प्रथम मंत्र पढ़कर प्रार्थनापूर्वक नित्य नियम से मृत्तिका आनकर बुद्धिमान् तीन भाग करे। प्रथम भागवाली मृत्तिका से लिंग गुदा शुद्ध करे, दूसरे भाग से हाथ पैर शुद्ध करे। तृतीय भागवाली मृत्तिका लेकर स्नानकाल में शरीर में लेपन करके स्नान करे। ऐसी मृत्तिका लगाने की विधि शास्त्र में लिखी है। और लिखा है कि श्मशान की मृत्तिका, हल की जोती खेत की, मूषक-बिल की, भीत की, मलमूत्र स्थान की, बामी की, अशुद्ध मृत्तिका, किसी के हाथ पैर की धोई हुई बची मृत्तिका, वृक्ष के नीचे की, गौशाला की, पानी के अंदर की मृत्तिका, इन सबको नहीं ग्रहण करना चाहिये। प्रथम यह सब टकसार रही, अब नहीं है। कमती है। इसीलिए प्रथम सब संत खन्ती रखते रहे। खूब डबल जलपात्र रखते रहे। शौच के लिए दूर चले जाते रहे। शुद्ध मृत्तिका खोद कर लाते रहे, उसीसे हाथ पैर शुद्ध करते रहे। अब यह सब रीति दिन दिन घटती जाती है। अब जलग्रहण मंत्र लिखते हैं—

सलिलस्य मुखं दृष्ट्वा विष्णुरूपं नमोस्तुते। क्रियार्थमहं गृह्णामि आपोदेव्यः पुनन्तु माम्॥

अर्थात् जल को देखकर बोले, "हे विष्णुरूप! आपको नमस्कार है। शौचादि क्रिया के लिए मैं आपको ग्रहण करता हूं, आप हमें पवित्र करें।" यह मंत्र पढ़कर जल लेकर प्रथम लघुशंका जावे। लघुशंका करने का मंत्र यह है। यथा—

धरे त्वदाश्रितं सर्वं त्वं चैव केशवाश्रिता। मूत्रं त्यजाम्यहं देवि क्षमस्व तत्क्षमावति॥

अर्थात् "हे पृथ्वी देवि! आपके आश्रित सब हैं और आप केशवभगवान् की आश्रिता हैं। मैं मूत्र त्यागन

रा० प०

करता हूं मेरे अपराध को क्षमा करो क्योंकि आप क्षमा के रूप ही हैं।" यह पढ़कर लघुशंका करे। लघुशंका करके

करता हूं मेरे अपराध को क्षमा करो क्योंकि आप क्षमा के रूप ही हैं।" यह पढ़कर लघुशंका करे। लघुशंका कच्छ खोलकर करना चाहिए। यथा याज्ञवल्क्य—

मूत्रं कृत्वा विना शौचं कच्छां बद्ध्वा द्विजाधमः। कच्छान्वितो मूत्रयित्वा समूढो नरकं व्रजेत् ॥

अर्थात् विना जल के लिए लघुशंका करके जो कच्छ लगा लेते हैं वे ब्राह्मण अधम हैं। कच्छ समेत लघुशंका करके मूर्ख नरक में जाता है। इसलिए कच्छ खोलकर लघुशंका करनी चाहिए। लघुशंका करके डोलडाल की आधी शुद्धि करनी चाहिए। ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है अब डोलडाल जाने की विधि देखाते हैं। यथा—

ततो बहिर्गच्छन्नैर्ऋत्यां दिशि गत्वा सूर्यं दक्षिणे दत्वा वस्त्रेण शिरः प्रावृत्य यज्ञोपवीतं दक्षिणकर्णे निधाय ॥

अर्थात् तब बाहर पश्चिम-दक्षिण कोण की ओर जाकर सूर्य भगवान् को दक्षिण (दहिनी) ओर देकर शरीर को ठीक कर, शिर पर वस्त्र लपेट कर और दाहिने कानपर यज्ञोपवीत धर कर भाव हाथ के अन्दर से यज्ञोपवीत सब निकाल कर तब कान पर धर मौन होकर डोलडाल के लिए बैठे। यहां पर दाहिनी ओर सूर्य को देकर लिखा है। इसका तात्पर्य्य यह है कि दिन में और दोनों संध्याकाल में सूर्य भगवान् पूर्वाभिमुख माने जाते हैं और रात्रि में दक्षिण माने जाते हैं। इसलिए दिन में और दोनों संध्या में भाव ४ बजे सबेरे से कुछ सन्ध्या काल तक उत्तर मुख होकर मल मूत्र त्यागे। रात्रि में दक्षिण मुख होकर के। ऐसा शास्त्रों का सिद्धान्त है। यथा मनुस्मृति अध्याय ४—

मूत्रोधार समुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदंमुखः। दक्षिणाभिमुखो रात्रौ सन्ध्ययोश्च यथा दिवा ॥

अर्थात् दिन में और दोनों सन्ध्या काल में उत्तर मुख होकर और रात्रि में दक्षिण मुख होकर मल मूत्र का त्याग करे। ऐसा ही सर्वत्र शास्त्रों में लिखा है। हमारे साधुओं में यहां दक्षिण सूर्य का अर्थ समझते हैं कि सूर्य को दाहिनी ओर लेना चाहिए। इसी से दोपहर के बाद दक्षिणमुख होकर मल मूत्र त्यागते हैं। सो ऐसा नहीं करना चाहिए। इसमें दोष है तातें सब सज्जनों से सविनय प्रार्थना है कि इस विपरीत कर्म को त्याग दें। और यह न समझें कि हमारी परंपरा चली आती है। इसको कैसे त्यागें। नहीं, शास्त्रविरुद्ध कर्मों को त्याग देना ही महापुरुषों का काम है। और दास के ऊपर नाराज भी न हों, यह विनती है। ऐसा ही यज्ञोपवीत भी शौचकाल में मालाकार बनाकर सब दाहिने कान पर धर लेना चाहिए। सज्जनो! इसमें कुछ भी कष्ट नहीं है। आपके कर्म धर्म उत्तम हो जावेंगे। अब यहां पर शौच के लिए कुछ स्थाननिर्णय वार्तिक में करते हैं। मनु आदि शास्त्रों में लिखा है—मार्ग में, भस्म के ढेर पर, गौशाला में, हल की जोती भूमि पर, अन्न के खेतों में, जल में, पर्वत पर, टूटे हुए मंदिरों में, गर्त (खद्दे) में, वामी में, जीवजंतुसंयुक्त भूमि में, नदीतट पर, तीर्थ के आस पास, चलते में, खड़े खड़े, पूर्वमुख अथवा पश्चिम मुख होकर, सूर्योदय काल में, मध्याह्न तथा अस्तकाल में, ब्राह्मणों के सामने, आंधी से उड़े हुए तृण, काष्ठ, अग्नि, गौ, ब्राह्मण, चन्द्र, सूर्य, जल इन सबको देखते हुए मल मूत्र का त्याग कभी न करे। यदि आगे दिवार आदि की ओट हो, टट्टी में, रात्रि में, अंधकार में, कुहर में, दिशाभ्रम हो जीव का भय होने पर चाहे जिधर को मुख करके बैठे इसमें दोष नहीं है।

मंत्रः।

उत्तिष्ठन्तु सुराः सर्वे यक्षगन्धर्वकिन्नराः। पिशाचागुह्यकाश्चैव मलमूत्रं करोम्यहम्॥

अर्थात् हे सब देवता, वृक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्य आप अब उठो, मैं मल मूत्र को करता हूं। यह मंत्र पढ़

अर्थात् हे सब देवता, वृक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्य आप अब उठो, मैं मल मूत्र को करता हूं। यह मंत्र पढ़ कर तीन ताल देकर भूत प्रेतादि को भगा कर शौच के लिए बैठे। एक स्थान पर देर तक न बैठे, धीरे २ हटता जावे। बाद जल लेकर मृत्तिका लगावे। मृत्तिका लगाने की विधि कहते हैं। विष्णुपुराणे—

एका लिंगे गुदे पंच तथा वामकरे दश। उभयोः सप्त दातव्या मृदः शौचोपपादितः॥
तिस्रस्तु पादयोर्देयाः शुद्धिकामेन नित्यशः। करपृष्ठे च षट् देया तिस्रश्च नखशोधने॥
दिवाविहितशौचार्द्धं रात्रावर्द्धं समाचरेत्। रुज्यर्द्धं च तदर्द्धं वा पथि चौरादिबाधिते॥
एतद् गृहस्थप्रमाणं ब्रह्मचारिणोद्विगुणम्। वानप्रस्थस्य त्रिगुणं संन्यासिनां चतुर्गुणम्॥

अर्थात् एक बार लिंग में ५ बार गुदा में तथा बायें हाथ में दश बार पुनः दोनों हाथों में ७ बार, तीन २ बार दोनों चरणों में शुद्धि के लिए मृत्तिका लगानी चाहिए। हाथ के पृष्ठ में ६ बार तीन बार नखशुद्धि में लगावे। दिन में जो शौच करना लिखा है उससे आधा रात्रि में उससे भी आधा रोगी होने पर और मार्ग में तथा चोरों के बाधा में उससे भी आधा मृत्तिका लगावे। अर्थात् "पथि शूद्रवदाचरेत्" मार्ग में शूद्र के समान आचरण करे। स्त्री शूद्र को उससे आधा कर्म लिखा है। यदि तन्दुरुस्त हो तो कभी कम न करे। यह गृहस्थ के लिए कहा है ब्रह्मचारी को दो गुण वानप्रस्थ को तीन गुण संन्यासी को और वैष्णवों को चौगुण मृत्तिका लगानी चाहिए। मृत्तिका शुद्ध लानी चाहिए, खराब नहीं।

शास्त्र में लिखा है कि मशान की, मूशा की खोदी, हल की जोती, भीत की, अशुद्ध मल मूत्र स्थान की, बिना

खोदी, शौच की बची मृत्तिका, बामी की, वृक्ष के जड़ की, जल के अंदर की, यह सब मृत्तिका नहीं लेनी चाहिए। प्रथम यह सब रीति रही अब कमती हो गई है। इस लिए इन बातों पर सज्जनों को खूब ध्यान देना चाहिए। और यह भी स्मरण रखना चाहिए कि गंगादि तीर्थों के जल से शौचादि कर्म नहीं करना चाहिए। यदि करे भी तो जल जूठा करके डोलडाल जाना चाहिये। यथा—

आनन्दसंहितायाम्।

गंगायास्सलिलं वत्स तथा तीर्थादिकस्य च। उच्छिष्टेनैव कर्त्तव्यं मलमूत्रस्य शोधनम्॥

अर्थात् गंगाजी के जल तथा अन्य किसी तीर्थों के जल को जूठा करके शौचकर्म करना चाहिए।

मृत्तिका लगाने का मंत्र।

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम्॥

तुम्बिकापात्रशुद्धि मंत्रः।

ॐ जलं दहति पापानि कमण्डलुगतं तु यत्। गंगातोयसमं नित्यं जलपात्रं च शुध्यति॥

काष्टपात्रशुद्धि मंत्रः।

ॐ जले चाग्निः स्थले चाग्निरग्निश्च वायुमण्डले। त्रिभिरग्निप्रकाशैश्च काष्टपात्रं च शुध्यति॥

अर्थात् प्रथम मंत्र से हाथ पैर शुद्ध करे दूसरे मंत्र से तुंबिका का कमण्डलु शुद्ध करे। तीसरे मंत्र से काठ का कमण्डलु शुद्ध करे। पात्र शुद्ध करने की विधि शास्त्र में लिखी है। भस्म से काँसा का पात्र, मृत्तिका से पित्तल का

पात्र, खटाई से ताँबा, गोबर से लोहा शुद्ध होता है। और सोना चाँदी का पात्र केवल धोने से पवित्र होता है।

पात्र, खटाई से ताँबा, गोबर से लोहा शुद्ध होता है। और सोना चाँदी का पात्र केवल धोने से पवित्र होता है। सोना चाँदी ताँबा काँसा आदि के पात्रों से शौच न जावे।

पात्र शुद्ध करके १२ अथवा १६ कुल्ला करके तब कान पर से यज्ञोपवीत उतार कर दन्तधावन करे। और तभी बोलना भी चाहिए यह रीति छूट गई है। कितने संत कान पर यज्ञोपवीत धरे २ दातोन करते हैं। सो नहीं करना चाहिए। प्रयोगपारिजात में और आश्वालायन में लिखा है—

पुरतः सर्व देवाश्च दक्षिणे पितरस्तथा। ऋषयः पृष्ठतः सर्वे वामे गण्डूषमाचरेत्॥
कुर्य्याद्द्वादशगण्डूषान् पुरीषोत्सर्जने ततः। मूत्रोत्सर्गे च चतुरो भोजनान्ते तु षोडशम्॥
भक्ष्यभोज्यावसाने तु गण्डूषाष्टकमाचरेत्।

दक्षस्मृतौ।

पुरीषे मैथुने होमे प्रस्रावे दन्तधावने। स्नानभोजनजाप्येषु सदामौनं समाचरेत्॥

अर्थात् सन्मुख सब देवता हैं दाहिनी ओर पितर हैं पीठ पर सब ऋषि लोग हैं इससे बाईं ओर कुल्ला करना चाहिए। शौच करके द्वादश कुल्ला, लघुशंका करके चार और भोजन करके षोडश (१६) कुल्ला चबेना जल पान करके फलादि खाकर आठ कुल्ला करे। दक्षस्मृति में लिखा है कि शौच में, स्त्रीप्रसंग में, हवन में, लघुशंका में, दन्तधावन में, स्नानकाल में, भोजनकाल में, मंत्र जपने में सदा मौन धारण करे। कहने का तात्पर्य यह है कि मौन होकर करे। दन्तधावन कौन २ वृक्ष के होना चाहिए सो दिखाते हैं—

खदिरश्च करंजश्च कदम्बश्च वटस्तथा। चिंचिणीवेणुपृष्टं च आम्रो निम्बस्तथैव च ॥
अपामार्गश्च बिल्वश्च अर्कश्चोदुंबरस्तथा। एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि ॥
सर्वे कंटाकिनः पुण्या आयुर्दा क्षीरिणस्तथा। कटुतिक्तकषायाश्च बलारोग्यसुखप्रदाः ॥
द्वादशांगुलमानेन दन्तकाष्ठं विधीयते। क्षत्रविट्शूद्रवर्णानां नवषट् चतुरंगुलम् ॥
कनिष्ठाग्र परिणाहं सत्वं च निर्व्रणं ऋजु। चूतपत्रं सदाग्राह्यं प्रतिषिद्धे दिने दिने ॥
कासी कुशी पलाशी च कर्पासी कंटकी तथा। दन्तधावनकर्तव्यं सद्यो गोमांसभक्षणम् ॥
दक्षिणे पश्चिमे यो वै दन्तधावनमाचरेत्। तस्य स्नानंफलं नास्ति तदन्यस्यां समाचरेत् ॥

अर्थात् खैर १ करंज २ कदम्ब ३ वट की जटा ४ इमिली ५ वेणु के पृष्ठ भाग ६ आम्रपल्लव ७ नीम ८ अपामार्ग (लटजीरा) ९ बेल १० आक ११ गूलर १२ यह द्वादश काष्ठ दन्तधावन कर्म में उत्तम कहा है। कांटे का सब दंतधावन पुण्य देने वाला है तथा क्षीर वाला आयुर्दा है और कटु तिक्त कशेला क्रम से बल, आरोग्य, सुख का देने वाला है। द्वादशांगुल ब्राह्मणों के लिए कहा है और क्षत्रिय को ९ अंगुल वैश्य को ६ अंगुल शूद्र को और स्त्री को ४ अंगुल का दंतधावन करना लिखा है। कनिष्ठा के अग्र भाग जैसा मोटा छिलका समेत गीला हो अथवा सूखा हो सीधा हो टेढ़ा न हो बिना कीड़ी का हो न बहुत लंबा हो न छोटा हो ऐसा दंतधावन करना चाहिए। जिन २ दिनों में दातोन करना निषेध लिखा है (जैसे कि एकादशी, रामनौमी, कृष्णाष्टमी, वामनद्वादशी, नृसिंह

चौदश आदि व्रतों में और पूर्णिमा, संक्रांति, अमावस्या तथा और भी उत्तम पर्वों में तथा परिवा, षष्ठी दिनों में दन्त-

चौदश आदि व्रतों में और पूर्णिमा, संक्रांति, अमावस्या तथा और भी उत्तम पर्वों में तथा परिवा, षष्ठी दिनों में दन्तधावन नहीं करना चाहिए। उस दिन आम के पत्ते से सोभी तोड़ कर नहीं गिरे हुए पत्ते से मुखशुद्धि कर लेना चाहिए। यदि न मिले तो "अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धे दिनेषु च। अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत्" इस हारीतस्मृति के अनुकूल दंतधावन न मिलने से द्वादश कुल्ला करके मुख शुद्ध कर लेवे। काश, कुश, पलाश, कपाश, कंटकी इनके दंतधावन करना शीघ्र गोमांस भक्षण के समान दोष है। दक्षिण पश्चिम की ओर बैठ कर जो दातोन करे तो उसको स्नान का फल नहीं होता है फिर अन्य स्नान करे तब शुद्ध होता है। यह भी रीति साधुओं में खूब रही। अब कमती होगई है इसलिए इसकी भी शिक्षा होनी चाहिए। कोई २ संत लोग प्रथम प्रभाती कर लेते हैं, तब डोलडाल जाते हैं। कोई २ विना डोलडाल किए ही स्नान कर लेते हैं सो नहीं करना चाहिए दोष है। अब वृक्ष से प्रार्थना करने का मंत्र लिखते हैं—

नमस्तेऽमृतवर्चसे बलवीर्यविवर्धिने। बलमायुश्च मे देहि पापान्मां त्राहि दूरतः॥ १॥

दन्तकाष्ठछेदन मंत्रः।

आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजापशुवसूनि च। ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च तन्नो* देहि वनस्पते॥ २॥

दन्तधावन मंत्रः।

दन्तरूपमधोगम्य दन्तधावनमुत्फलम्। कुर्वन्ति च त्रयोदेवा ममदोषो न दीयताम्॥ ३॥

अर्थात् हे वनस्पति! बल, वीर्य, तेज, आयु की वृद्धि करने वाली आपको नमस्कार है आप हमें बल आयु दीजिए

* त्वन्नं इति पाठान्तरम्।

और घात करने के पाप से मेरी रक्षा कीजिए। यह पढ़ कर दूसरे मंत्र से तोड़ लेना चाहिए। तीसरा मंत्र पढ़ कर उत्तर अथवा पूर्वाभिमुख होकर सुन्दर आसन पर बैठ कर मौन होकर दन्तधावन करे। वृद्ध-ब्रह्मसंहिता में लिखा है। अ० ७—

वर्जयेदंगुलिं चापि दन्तशुद्धौ विनोदयम्। अंगारबालुकापर्णतृणवस्त्रनखादिभिः॥
न कुर्य्याद्दन्तकाष्ठं च वैष्णवोदूषितेदिने।

तथा हारीतस्मृतौ।

अंगुल्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा। मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणम्॥
दिवा कपित्थछायायां रात्रौ दधि शमीषु च। कार्पासं दन्तकाष्ठं च विष्णोरपि श्रियं हरेत्॥

अर्थात् तर्जनी अंगुली से दांत न रगड़े मध्यमानामिका से रगड़े सूर्योदय से प्रथम प्रभाती करे। भस्म से, बालुका (रेती) से, आम छोड़ कर और किसी के पत्ते से, घास से, वस्त्र (कपड़ा) से, नख से दन्तधावन न करना और न वैष्णव होकर व्रतादि दिन में करे। हारीत में लिखा है कि अंगुली के दंतधावन और खाली लवण (रामरस) तथा मृत्तिका भक्षण करना गोमांस भक्षण के समान दोष है। दिन में कपित्थ (कैथा) की छाया, रात्रि में दधि खाने से और शमी के तथा कपास के दातोन से इन्द्र की भी श्री नष्ट हो जाती है। दन्तधावन करके भगवन्नामोच्चारण करता हुआ नदी में अथवा तीर्थ में जाकर हाथ पैर और मुख धोकर तीन आचमन करे। जल में कुल्ला थूक मलमूत्र कभी न करे। शास्त्र में लिखा है, यथा—

कभी न करे । शास्त्र में लिखा है, यथा—

प्रवाहे सन्मुखे स्नानं तटाके रविसन्मुखे । कूपे वाप्यां तथा पूर्वगृहे स्नानं तथोत्तरम् ॥

प्रवाहे शतधेनुश्च तटाके दशधेनुकम् । कूपे वाप्यामेकधेनुं गृहं स्नानं तु केवलम् ॥

अर्थात् नदी आदि प्रवाह (धारा) में सन्मुख होकर स्नान करे, तड़ाग में सूर्य के सामने तथा कूप और वाउड़ी में पूर्वमुख होकर घर में उत्तरमुख होकर स्नान करे । नदी में सौ गोदान का फल होता है । तड़ाग में दश गौ और कूप, वाउड़ी में एक गौ का फल होता है घर में स्नान करने से फल नहीं होता है केवल शुद्धि हो जाती है । अत्रिस्मृति में लिखा है, यथा—

गृहाद्दशगुणं कूपं कूपाद्दशगुणं तटम् । तटाद्दशगुणं नद्यां गंगासंख्या न विद्यते ॥

अर्थात् घर से दशगुण फल कूप पर, कूप से दशगुण तड़ाग में, तड़ाग से दशगुण फल नदी में होता है गंगाजी में स्नान के फल की संख्या नहीं कह सकते हैं । और भी लिखा है कि कूप हो तो घर में न स्नान करे । यदि तड़ाग हो तो कूप पर न नहावे, नदी हो तो पोखरा भी छोड़ देवे, जहां तीर्थ हो तो सबको छोड़कर उसमें स्नान करना चाहिए । प्रथम ॐ विष्णुः ॐ विष्णुः ॐ विष्णुः । इस मंत्र से तीन आचमन करके षडंगन्यास करे । षडंगन्यास । ॐ वाक् ॐ वाक् ॐ प्राणः ॐ प्राणः ॐ चक्षुः ॐ चक्षुः यह पढ़कर छवों अंगका संशोधन करके प्राणायाम करे । प्राणायाम करके नाभिमात्र जल में स्थित होकर स्नान करे ।

स्नान संकल्प । ॐ आद्यपुराण पुरुषोत्तमाय ब्रह्मणे नमः ॐ अद्यश्री ब्रह्मणोद्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशति कलियुगे जम्बूद्वीपे भारतखण्डे आर्यावर्ते अमुकक्षेत्रे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ

अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकतीर्थे अमुकगोत्रे अमुकदासः श्रीसीतारामकैंकर्य्यार्थे प्रातः स्नानमहं करिष्ये इति संकल्पः ॥

यह संकल्प पढ़कर जल में प्रणवात्मक त्रिकोणयंत्र करके उसपर आठ दल का मण्डल लिखकर सूर्यमण्डल की ओर अंकुशमुद्रा से सर्व तीर्थों को आवाहन करे। मंत्रद्वय।

ॐ ब्रह्माण्डोदर तीर्थाणि करैः स्पृष्टानि ते रवे। तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर ॥ १ ॥

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥ २ ॥

तब सुरभियोनि कुंभकलिंग मुद्रा को देखावे। इन दोनों मंत्रों से सब तीर्थों का आवाहन करके कुम्भक मुद्रा से शिर में तीन वार जल सिंचन करके मूलमंत्र अर्थात् श्रीराममंत्र उच्चारण करे फिर सातों छिद्र अर्थात् दोनों हाथों से आंख कान नाक मुख बन्द करके तीन गोता प्रेम से लगाकर फिर तीन आचमन करके जल से द्वादश तिलक करके गायत्री मंत्र से शिखाँबंधन करके श्रीराममंत्र से श्रीरामं संतर्पयामि स्वाहा। शिखा खोलने का मंत्र।

ॐ ब्रह्मपुत्री शिखायां च ब्रह्मदण्डतपस्विनी। सर्वदेवनमस्कारैः शिखामुक्तिं करोम्यहम् ॥ १ ॥

शिखाबन्धन मंत्रः।

ब्रह्मनामसहस्रेण शिवनामशतेन च। विष्णुनामसहस्रैस्तु शिखाबन्धं करोम्यहम्

योगि याज्ञवल्क्यः।

स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवताऽर्चने। शिखाग्रन्थिं विनाकर्म न कुर्य्याद्वै कदाचन ॥

शौचेऽथशयने संगे भोजने दन्तधावने। शिखामुक्तिं सदाकुर्य्यादित्येतन्मनुरब्रवीत् ॥

अर्थात् प्रथम मंत्र से शिखा खोले, दूसरे मंत्र से बांधना चाहिए। योगियाज्ञवल्क्य का सिद्धान्त है कि स्नान, दान देने में, जप करने में, संध्या करने में और देवतादि के पूजन में शिखा बांधे विना कर्म कदापि न करना। मल मूत्र के त्याग में, शयन में, स्त्रीसंग में, भोजनकाल में और दन्तधावन करने में शिखा खोलकर करना मनुजी का कथन है। और भी बहुत बातें कही हैं। इससे शिखाबंधन अवश्य करना चाहिए। यहांतक स्नान की विधि कही है। स्नान करके उसी स्थान पर अथवा अपने स्थान पर जाकर संध्या करे। संध्या के प्रथम वस्त्र नहीं धोवे संध्या करके धोना चाहिए। वस्त्र जल में तथा पैर पर और त्रिगुणी करके निचोड़े नहीं यदि ऐसा करे तो नरक में जावे और धोती लँगोटी धोकर कन्धे पर भी न धरे दोष है। वस्त्रशुद्धि मंत्रः।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा। यःस्मरेत्पुंडरीकाक्षं सवाह्याभ्यन्तरं शुचिः॥

आसनविधि।

गोमयेन शुद्धमृदा च भूमिमादौ प्रलेपयेत्। कृष्णाजिनं कुशासनमासनं परिकल्पयेत्॥

अर्थात् गोवर और शुद्ध मृत्तिका से प्रथम पृथ्वी को लेपन करके उस पर कृष्ण मृग का मृगछाला कुशासन का आसन रक्खे तब ॐ भूर्भूवः स्वः कूर्माय नमः। यह मंत्र पढ़कर सुरभि मुद्रा को देखावे, पीछे फिर यह मंत्र पढ़े। आसनशुद्धिकरण मंत्रः।

ॐ पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

अर्थात् हे पृथिवी! आपने सब लोकों को धारण किया है आपको विष्णु ने धारण किया है और आप मुझको

धारण करके आसन पवित्र करो। इस मंत्र से आसन पवित्र करके तब बैठकर पंचसंस्कारों की भावना करे। पंचसंस्कार प्रारम्भ होता है। और मुद्राविधि है। श्रीरामजी की पूजा में सुरभि मुद्रा सब मुद्राओं में पवित्र मानी गई है। इससे यह मुद्रा भगवत् को बड़ी प्यारी है।

प्रथम ऋग्वेदीय पंचसंस्कार लिखते हैं, यथा—

ॐ श्रीरामं नत्वा मुद्राः पंचतत्त्वतोय आत्मनि धारयेत् स श्रीरामस्यानुचरो भवति इति ऋग्वेदे प्रथमसंस्कारः ॥ १ ॥

ॐ यो वै लोकपावनीं तुलसी काष्ठजां मालिकां कण्ठे धारयति सजीवन्मुक्तो भवति इति ऋग्वेदे द्वितीयसंस्कारः ॥ २ ॥

ॐ योसौ गोपीचन्दन वेणुपत्राकारमूर्ध्वपुण्ड्रं तिलकं द्वादशपंच यथा संख्यमात्मनो निर्धारयति। शंखचक्रांकितवस्त्राणि मंत्राणि च स श्रीरामस्यानुचरो भवति स्मरते ततो भवति इति ऋग्वेदे तृतीयसंस्कारः ॥ ३ ॥

ॐ रां रीं रूं रैं रौं रः। ॐ यो हंससोहं परमात्मानं स्मरते समहीयान्स परात्परे लोके पूज्यो भवति इति ऋग्वेदे चतुर्थःसंस्कारः ॥ ४ ॥

ॐ योसौ नासाग्रे परमात्मानं सत्यं नित्यं जपति ध्यान विशेषो भवति श्रीरामं सन्ध्यायति

समहात्मा भवति श्रीरामे सदामतिर्भवति इति ऋग्वेदे पंचमःसंस्कारः ॥ ५ ॥

पुण्ड्रंमुद्रा तथा नाममाला मंत्रश्च पंचमः । अमी हि पंचसंस्काराः परमैकान्त हेतवः ॥

अर्थात् जो श्रीरामजी को प्रणाम करके ज्ञानपूर्वक पंच संस्कार को धारण करते हैं वे श्रीरामजी के सेवक होते हैं ॥ १ ॥ जो नियमपूर्वक समस्त लोकपावनी तुलसीमाला को कण्ठ में धारण करते हैं वे जीवन्मुक्त होते हैं ॥ २ ॥ जो यह गोपीचन्दन का वेणुपत्राकार ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक द्वादश अथवा पांच यथा प्रमाण धारण करते हैं और शंख चक्रांकित होते हैं तथा शुक्ल वस्त्र और मंत्र को ग्रहण करते हैं वे श्रीरामजी के सेवक होते हैं ॥ ३ ॥ जो ॐसोहं के परे परब्रह्म श्रीरामकृष्णादि को स्मरण करते हैं वह महान् होकर परात्पर लोक में पूजित होते हैं ॥ ४ ॥ जो नासाग्रभ्रू के मध्य में ध्याननिष्ठ होकर परमात्मा के सत्य स्वरूप श्रीरामजी को हृदय में धारणकर मन्त्र जपते हैं वे महात्मा होते हैं उनकी मति श्रीरामजी में होती है ॥ ५ ॥

उद्यतोबतसहृदः पुरुषः स जीवन्मुक्तो भवति परमात्मने स प्रियो भवति कृतकृत्यो भवति इति ऋग्वेदे पंचसंस्कारान् कथितान्धृतवान्महत्पुरुषः परमार्थपरमतत्त्वं सैव परंधामनित्यं प्राप्नोति स तरणतारणो भवति इति ऋग्वेदे श्रेष्ठागमे परिचयाग्नीये ।

अर्थात् सर्वतेजोमय हृदयकमल में पुरुष को जानता वह जीवन्मुक्त होता है परमात्मा को प्रिय होता है कृतकृत्य होता है यह ऋग्वेद का कहा पंचसंस्कारों को जो धारण किया है वह परमार्थ परमतत्त्व का ज्ञाता परमधाम को प्राप्त होता है वह तरणतारण रूप होता है ।

नारदपंचरात्र में लिखा है कि ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक १ शंख चक्र धनुर्बाणादि मुद्रा २ नाम ३ माला अथवा याग पूजनादि कर्म ४ मंत्र ५ यही पंचसंस्कार परम एकांतिभक्तों को होना चाहिए।

अथ धामक्षेत्रम्।

रामानन्दसुसंप्रदाय नितरां चेतस्सतां सर्वदाऽयोध्या धर्मविधायिनी शुभतरा शालाविलासस्तु सः। स श्रेयः शुभचित्रकूटशिखरी गोदावरी संक्रमः श्रीरंगाख्यसुधामकं शुभतरं क्षेत्रं धनुस्तीर्थकम् ॥ १ ॥ गोत्रं चाच्युतसंज्ञकं स शुभदं शुक्लश्चवर्णो भवेच्छ्रीमद्रामउपास्य एव भगवान्निष्टा तु सीता सदा। आचार्याः कमलोर्ध्वपुण्ड्रतिलकं मंत्रं परं तारकं विश्वामित्रऋषिर्वशिष्ठमुनिको देवोभवेन्मारुतिः ॥ २ ॥ सामीप्यं शुभमुक्तिरेव परमाशाखास्वनन्तामता श्रीरामं त्रिपदिर्मसा तु कमलादेवी तु पूज्योच्यते। ऋग्वेदोहरिनामकं त्वशनकं द्वारं तु कर्णं मतं श्रीहनुमान्सुपार्षदो भवतु वैश्रीवैष्णवानां सदा ॥ ३ ॥

भाषाधामक्षेत्रम।

श्रीरामानन्द गुरु प्रणाम, अयोध्या धर्मशाला चित्रकूट सुखविलास गोदावरी परिक्रमा क्षेत्रधनुषतीर्थ श्रीरंगनाथधाम अच्युतगोत्र शुक्लवर्ण श्रीसीताराम इष्ट जानकीमंत्र ॐक्लीं रें रें जानकीनाथाय नमः इति द्वादशाक्षरमंत्र श्रीरामउपासीउपासनामंत्र ॐक्लींरांरामाय नमः

इत्यष्टाक्षर मंत्र अथ युगल मंत्र ॐह्रींह्रींह्रीं सीतावल्लभाय नमः इति द्वादशाक्षरमंत्रः राघवा-

इत्यष्टाक्षर मंत्र अथ युगल मंत्र ॐह्रींह्रींह्रीं सीतावल्लभाय नमः इति द्वादशाक्षरमंत्रः राघवानन्दमहाप्रसाद इतिमंत्रः ॐअन्नंब्रह्मरसो विष्णुर्भोक्तादेवोमहेश्वरः । एवं ज्ञात्वा तु यो भुंक्ते अन्नदोषैर्नलिप्यते ॥ १ ॥ अथ रामतारक मंत्रः ॐक्लींतेजसे रांतारकब्रह्म स्वाहा इति द्वादशाक्षर मंत्रः अनंतशाखासामीप्यमुक्ति श्रवणद्वार लक्ष्मीआचार्य विश्वामित्र ऋषि वशिष्ठमुनि हनुमान् देवता हनुमान् मंत्रः ॐह्रांह्रींह्रूंह्रैंह्रौंह्रः इति षडक्षरमंत्रः रामगायत्री ऋग्वेदहरिनाम आहार श्रीहनुमान्पार्षद कमलादेवी सूर्यवंशशुद्ध सिंहासन किरीटमुकुट ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक वैजयन्तीमाला श्रीरामानन्द वैष्णवाः ।

(भाषाटीका)

श्रीरामानन्द गुरु को प्रणाम है । श्रीअयोध्याजी धर्म्मशाला है । श्रीचित्रकूट सुखविलास है । गोदावरी परिक्रमा है । क्षेत्रधनुषतीर्थ है । श्रीरंगनाथ धाम है । धाम चार हैं । सत्ययुग का बद्रिनारायण, त्रेता का अयोध्या परंतु श्रीरंगनाथ जी के न रहने से अयोध्या धर्मशाला होगई और श्रीरंगनाथजी त्रेतायुग का धाम होगया । इससे श्रीरंगनाथजी धाम कहे जाते हैं । कोई २ पटल में "रामनाथ धाम" लिखा है सो ठीक नहीं है । द्वापर का धाम श्रीद्वारकापुरी है । कलियुग का धाम श्रीजगन्नाथजी हैं । यही चारों धाम हैं । धाम का अर्थ यही है कि जहां पर चारों युगों की मूर्ति पूजी जाती हो जैसा कि वर्तमान समय में स्पष्ट है । अच्युत गोत्र है । अच्युत गोत्र होने का प्रमाण नारदपंचरात्र कृष्णधर्म संहिता में लिखा है ।

कृष्णमंत्रोपदेशेन मायादूरमुपागता । कृपया गुरुदेवस्य द्वितीयं जन्म कथ्यते ॥ १ ॥ पितृगोत्री यथा कन्या स्वामिगोत्रेण गोत्रिका । श्रीकृष्णभक्तिमात्रेणाऽच्युतगोत्रेण गोत्रिकाः ॥ २ ॥

अर्थात् कृष्णमन्त्रोपदेश होनेसे माया दूर होगई श्रीगुरुदेवजी की कृपा से दूसरा जन्म होगया । जैसे पितागोत्र की कन्या विवाह होनेसे स्वामिगोत्र में गोत्रित होजाती है उसी प्रकार से भगवद्भक्ति करने ही मात्र से अच्युत गोत्र होजाता है । इससे वैष्णवों के अच्युत गोत्र हैं । शुक्ल वर्ण है भाव "शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्" इत्यादि प्रमाणों से भगवान् का शुक्लवर्ण है । इससे वैष्णवों का भी शुक्लवर्ण कहा है । श्रीसीताराम इष्ट हैं जानकी मंत्र है "ॐ क्लीं रेरें जानकीनाथाय नमः" इति द्वादशाक्षर मंत्र । साधु लोग समझते हैं कि यह श्रीजानकी मंत्र है सो यह जानकी मंत्र नहीं है । यह तो तन्त्रोक्त अनुष्ठान करने का श्रीरामजी का मंत्र है । श्रीजानकी मंत्र छे अक्षर का है "श्रींसीतायै स्वाहा" यह मंत्र है इसको श्रीराममंत्र के समान जानना चाहिए । श्रीरामउपासी का उपासना मंत्र "ॐ क्लीं रां रामाय नमः" इत्यष्टाक्षरमंत्र लिखा है सो भी अनुष्ठानी मंत्र है क्योंकि श्रीराममंत्र छः अक्षर का है जैसे कि "रां रामाय नमः" इस मंत्र में ॐकारादिकबीज नहीं होना चाहिए श्रीराममंत्र सब का कारण है । इसलिए शुद्ध श्रीरामतारक मंत्र परमवैदिक षडक्षर यही है दूसरा नहीं । अथ युगलमंत्र यहां पर युगलमंत्र नहीं लिखा है सो युगलमंत्र यह है श्रींसीतायै स्वाहा १ रां रामाय नमः २ यह श्रीसीतारामजी के दोनों मंत्र मिलकर युगलमंत्र कहाते हैं राघवानन्दमहाप्रसादमंत्र ॥

ॐअन्नं ब्रह्मरसोविष्णुर्भोक्तादेवोमहेश्वरः । एवं ज्ञात्वा तु यो भुंक्ते अन्नदोषैर्न लिप्यते ॥

अर्थात् अन्न ब्रह्मा रस विष्णु हैं और भोक्ता देवजनार्दन हैं ऐसा जानकर जो प्रसाद पाते हैं वह अन्न से उत्पन्न नाना दोषों करके लिप्त नहीं होते हैं । यह मंत्र पढ़ कर प्रसाद पाना चाहिए ।

ॐ क्लीं तेजसे रां तारकब्रह्म स्वाहा इति द्वादशाक्षरमंत्रः यह मंत्र रुद्रयामल तंत्र का है। इससे भी अनुष्ठान करना चाहिए। वैष्णव अनंत हैं इसलिए अनन्त शाखा हैं। हमारे में सेवा प्रधान है इससे सामीप्य मुक्ति लिखी है। नौधा भक्ति में प्रथम श्रवणभक्ति है। बिना श्रवण किए भक्ति नहीं होती है। इसलिए श्रवणद्वार कहा है। लक्ष्मी आचार्य हैं। यहां पर यत्र सीताभिधा लक्ष्मीर्वितनोति सदोत्सवम्। इस नारदपंचरात्र बृहद्ब्रह्मसंहिता के कथनानुसार लक्ष्मी सीताजी का नाम है। इससे श्रीराममंत्रराज की प्रचारिका श्रीजानकीजी को ही आचार्य जानना चाहिये। यदि लक्ष्मीजी को आचार्य माना जायगा तो ठीक नहीं, क्योंकि लक्ष्मीजी तो मंत्रद्वय की प्रचारिका हैं। फिर राममंत्र की आचार्या कैसे हो सकती हैं। इससे श्रीजानकीजी को ही आचार्य मानना चाहिए। विश्वामित्र ऋषि हैं। वशिष्ठजी मुनि हैं। हनुमान्जी देवता हैं। हनुमान् मंत्र ॐ हं हनुमते नमः। यह अष्टाक्षर श्रीहनुमान्जी का मुख्य मंत्र है। और ॐ ह्रांह्रींह्रूंह्रैंह्रौंह्रः। यह भी मंत्र है। श्रीरामगायत्री है। ऋग्वेद है। श्रीहरिनाम आहार है भाव रात्रि दिन भगवन्नाम जपना चाहिए। यहां पर रामपटल श्रीविष्वक्सेनजी को पार्षद लिखा है सो ठीक नहीं है। क्योंकि विष्वक्सेनजी वैकुण्ठवासी श्रीमन्नारायण के पार्षद हैं। श्रीरामजी के नहीं श्रीरामजी के पार्षद श्रीहनुमान्जी हैं यही सर्वत्र शास्त्रों में लिखा है। इसलिए श्रीरामोपासकों के पार्षद श्रीहनुमान ही हैं दूसरा नहीं विष्वक्सेन भूल से लिख गया है। इस बात पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। कमला देवी है सूर्यवंश में श्रीरामजी का अवतार हुआ है इसलिए श्रीरामभक्तों का सूर्यवंश है, शुद्ध सिंहासन है, किरीट मुकुट है, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक है, वैजयन्ति माला है, यह सब जिनको हो वह श्रीरामानन्दीय वैष्णव हैं। श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः॥

अथ पंचसंस्कारानुभावयेत्। ॐश्रीकृष्णनामांकितमुद्रां पावनीं य आत्मनो निर्द्धारयति शंखचक्रांकित वस्त्राणि च सपुण्यवान् श्रीकृष्णस्यानुचरो भवति इति सामवेदे प्रथमसंस्कारः॥१॥

ॐयो वै लोकपावनीं तुलसीकाष्ठजां मालिकां कण्ठे निर्धारयति सजीवन्मुक्तो भवति सलोके पावनो भवति इति सामवेदे द्वितीयसंस्कारः ॥ २ ॥

ॐयोसौ गोपीचन्दनवेणुपत्राकारोर्ध्वपुण्ड्रं नासिकार्द्धकेशपर्यन्त तिलकं द्वादशं पंचमं वा स्वात्मनो निर्द्धारयति सपुण्यवान् श्रीकृष्णस्यानुचरो भवति सलोके पूज्यो भवति इति सामवेदे तृतीयसंस्कारः ॥ ३ ॥

ॐयोसौ परमात्मनः श्रीकृष्णस्य नामस्वरेण मंत्रेण सदा हृदिस्थं परात्परं ध्यायति स याति महतो महीयान् सत्रैलोक्यपूज्यो भवति इति सामवेदे चतुर्थसंस्कारः ॥ ४ ॥

ॐयोसौ नामयज्ञेन परमात्मानं स्वरेण नित्यं यजति ध्यानावस्थितः श्रीकृष्णं यो ध्यायति समहत्पुरुषो महतो महीयान् सनित्यं गोविन्दस्य सदृशः इति सामवेदे पंचमसंस्कारः ॥ ५ ॥

ॐयोसौ पंचसंस्कारान्धृतवान् समहत्पुरुषः सजीवन्मुक्तः परमात्मनः सप्रियो भवति तस्य दर्शनात्पावनो भवति सामवेदे कथितान् पंचसंस्कारान् धृतवान् परमार्थपरायणः स वै परमधामनित्यरूपो भवति तरणतारणोभवति इति सामवेदे षट्परीक्षास्तथाहि चागमे ॥ पुण्ड्रं मुद्रास्तथानाममालामंत्रञ्चपंचमः । अमी हि पंचसंस्काराः परमैकान्तहेतवः ॥ इति सामवेदे पंचसंस्काराः ॥ ५ ॥

अर्थात श्रीकृष्णजी के नामांकित मुद्रा (शंख चक्र) परम पवित्र को और शंखचक्रांकित तथा नामांकित वस्त्रों को

अर्थात् श्रीकृष्णजी के नामांकित मुद्रा (शंख चक्र) परम पवित्र का और शंखचक्रांकित तथा नामांकित वस्त्रों को जो धारण करते हैं वह पुण्यात्मा श्रीकृष्णजी के भक्त होते हैं ॥ १ ॥ जो निश्चयपूर्वक लोकपावनी तुलसी की माला कण्ठ में धारण करते हैं वह जीवन्मुक्त होते हैं वह लोक में पवित्र होते हैं ॥ २ ॥

जो यह गोपीचन्दन का वेणुपत्राकार नासिका के अर्द्धभाग से केश पर्यन्त द्वादश अथवा पांच ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक धारण करते हैं वह पुण्यवान् श्रीकृष्णजी के अनुचर (सेवक) होते हैं वह लोकपूज्य होते हैं ॥ ३ ॥

जो यह परमात्मा श्रीकृष्णजी के स्वरूप को स्वर मंत्र के सहित जपते हुए ध्यान करते हैं वह महान् उत्तम (गोलोक) को जाते हैं वह तीनों लोक में पूज्य होते हैं ॥ ४ ॥ जो यह नाम यज्ञ से अर्थात् "यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि" इस प्रमाण से नाम यज्ञ से ध्यानावस्थित होकर नित्य परमात्मा को पूजन करते हैं। जो श्रीकृष्ण भगवान् को नित्य ध्यान करते हैं वह महान् से महान् पद को पाकर "भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च" इस ब्रह्मसूत्र के कथनानुसार भगवत्स्वरूप को प्राप्त होते हैं ॥ जो महापुरुष यह पंचसंस्कार धारण किए हैं वह जीवन्मुक्त हैं वह परमात्मा को प्रिय होते हैं उनके दर्शन से मनुष्य पवित्र होते हैं। यह सामवेदोक्त पंचसंस्कार को धारण से परमार्थपरायण होते हैं। वह निश्चय परधाम में नित्यरूप होते हैं तरणतारणरूप होजाते हैं। शास्त्र में लिखा है कि तिलक १ शंख चक्र २ नाम ३ मालाधारण ४ मंत्रोपदेश ५ यही पंचसंस्कार परमएकांतिक भजनानन्दियों के लिये हैं ॥ यह सामवेदीयपद्परीक्षा शाखा के मंत्र हैं।

अथ धामक्षेत्रम् ॥

निम्बादित्यानुयायिनां सर्वदासुखदायिनी । मथुराधर्मशालास्यात्क्षेत्रं तु गोमतीमतम् ॥
वृन्दावनविलासस्स्याद्गोवर्द्धन परिश्रमः । द्वारावतीसुधामस्यादिष्टा तु रुक्मिणी भवेत् ॥

श्रीगोपालउपास्यश्च वंशगोपाल मन्त्रकः । हंसशाखासारूप्यमुक्तिर्गोपालत्रिपदिर्मता ॥
सनकादिकआचार्यो द्वारं तु नासिका भवेत् । मुनिस्तु नारदश्चैव दुर्वासाश्चर्षिरुच्यते ॥
गरुडो देवताचैव सामवेदस्तथैव च । शुक्लवर्णोऽच्युतं गोत्रमहारोहरिनामकम् ॥
सुषेणपार्षदश्चैव वैष्णवानां तु सर्वदा ॥

(भाषाधामस्तोत्रम्)

श्रीनिम्बादित्य गुरु प्रणाम मथुरा धर्मशाला क्षेत्र गोमती वृन्दावन सुख विलास गोवर्द्धन परिक्रमा द्वारावती धाम रुक्मिणी इष्ट गोपाल उपासी वंशगोपाल मंत्र ॐक्लीं गोपालाय गोचराय. वंशीशब्दाय नमोनमः गोपालगायत्री हंसशाखा सारूप्य मुक्ति नासिका द्वार सनकादिक आचार्य नारद मुनि दुर्वासा ऋषि गरुड मंत्र ॐग्रांग्रींग्रूंग्रैंग्रौंग्रः । इति गरुडमंत्रः सामवेद श्रीभटमहाप्रसाद अच्युत गोत्र शुक्लवर्ण हरिनाम आहार सुषेण पार्षद श्रीनिम्बादित्यवैष्णवाः ॥ १ ॥

(भाषाटीका)

श्रीनिम्बादित्यगुरु को प्रणाम है । जिनकी मथुरा धर्मशाला है । क्षेत्र गोमती है । वृन्दावन सुखविलास है । गोवर्द्धन परिक्रमा है । द्वारावती अर्थात् श्रीद्वारकापुरी धाम है । रुक्मिणी इष्ट हैं । गोपाल के उपासक हैं । गोपाल वंश गोपालही मंत्र है । ॐक्लीं गोपालाय गोचराय वंशीशब्दाय नमोनमः । गोपाल गायत्री है । हंस शाखा है । सारूप्य मुक्ति

है। नासिका द्वार है। श्रीसनकादिक आचार्य्य हैं। श्रीनारद मुनि हैं। दुर्वासा ऋषि हैं। गरुड देवता हैं। ॐगंगरुडाय नमः। यह श्रीगरुडजी का मुख्य मंत्र है। और ॐग्रांग्रींग्रूंग्रैंग्रौंग्रः यह भी मंत्र है। सामवेद है। श्रीभटमहाप्रसाद मंत्र है जोकि पूर्वही में कह आये हैं। अच्युत गोत्र है। शुक्लवर्ण है। हरिनाम आहार है। सुषेण पार्षद हैं। यह सब जिनको हो वही श्रीनिम्बादित्य वैष्णव हैं। अब यजुर्वेदीय पंचसंस्कार कहते हैं।

सम्प्रदानुसारेण यथाक्रमं प्रदर्शयेत् प्रथम यजुर्वेदे हिरण्यकेशिशाखायाम् ऊर्ध्वपुण्ड्रं हरिपादाकृति आत्मनो निर्द्धारयति। मध्यछिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यवान् मुक्तिभाग्भवति इति श्रुतिप्रथमसंस्कारः ॥ १ ॥

अर्थात् चारों सम्प्रदाय के अनुसार जैसा जिसकी पंचसंस्कारों की विधि लिखी है सो देखाते हैं। प्रथम यजुर्वेदीय हिरण्यकेशिशाखा में जो लिखा है सो कहते हैं। भगवान् के पादाकृति अर्थात् चरण के आकार मध्य में छिद्र छोड़कर जो ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करते हैं वे प्रभु को प्यारे होते हैं वे पुण्यवान् मुक्ति के भागी होते हैं यह प्रथम संस्कार है ॥ १ ॥

धृतोर्ध्वपुण्ड्रोदरचक्रधारी विष्णुपरं ध्यायति यो महात्मा। स्वरेण मंत्रेण सदाहृदिस्थितं परात्परं स याति महतो महीयान् ॥ इति श्रुतिद्वितीयसंस्कारः ॥ २ ॥

अर्थात् ऊर्ध्वपुण्ड्र शंख चक्र धारण करने वाले जो महात्मा स्वर समेत मंत्र सहित पर विष्णु को हृदय में स्थित सदा ध्यान करते हैं वह महान् से भी महान् पद को प्राप्त होते हैं। यह वेद का कहा हुआ दूसरा संस्कार है ॥ २ ॥

पशुपुत्रादिकान्सर्वान् गृहोपकरणानि च। अंकयेच्छंखचक्राभ्यां नाम कुर्याच्चवैष्णवम्॥

इति श्रुतितृतीयसंस्कारः॥ ३॥

अर्थात् वैष्णवों को चाहिए कि पशु हाथी घोड़ा बैल तथा पुत्रादि लेकर नाती पोता सेवक भाव जो कोई अपना सम्बन्धी हो सबको और घर के वर्तन भांड़े आदि लेकर सब चीज़ों को शंख चक्र से अंकित करे। इसीलिए श्रीगोस्वामीजी ने रामायण में लिखा है "रामायुध अंकित गृह, सोभा बरणि न जाय" इत्यादि। इसका भाव यही है कि श्रीरामकृष्ण का भक्त होकर धनुष बाण शंख चक्र अवश्य धारण करे। और रामदास कृष्णदास आदि भगवत् सम्बन्धी नाम संस्कार करना चाहिए। यह तीसरा संस्कार है।

रां रामाय नमः इति मंत्रः अथर्ववेदे रामतापनीयोपनिषदि चतुर्थसंस्कारः॥ ४॥

सब सज्जनों से सविनयपूर्वक प्रार्थना है कि श्रीराममंत्र में ॐकार नहीं है। श्रीराममंत्र ॐकार का भी परम कारण है। कारण में कार्य नहीं लगाना चाहिए। और हमारे में तीन मंत्रों का उपदेश बराबर होता आया है। बीच में आकर दो मंत्र छूट गया है। इससे फिर उन दोनों मंत्रों को भी उपदेश देना चाहिए। बिना रहस्यत्रय जाने श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव नहीं होसकते हैं। वह रहस्यत्रय जीवनरूप सबको स्मरण करना चाहिए। रांरामाय नमः १

श्रीरामः शरणं मम २ यह अष्टाक्षर शरणागति मंत्र है॥ श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये। श्रीमते रामचन्द्राय नमः ३ यह मंत्ररत्न है। इसीको मंत्रद्वय कहते हैं। और

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥ ४॥

यह चर्म मंत्र श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण का है। यह सब मंत्र दीक्षाकाल में शिष्य को उपदेश करना चाहिए। यह

यह चर्म मंत्र श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण का है। यह सब मंत्र दीक्षाकाल में शिष्य को उपदेश करना चाहिए। यह सब विषय सप्रमाण विस्तार से श्रीराममंत्र परम वैदिक सिद्धान्त में वर्णन है। सब साधुओं को देखने योग्य है। अब पंचम संस्कार लिखते हैं।

शंखचक्रधरोविद्वान् मालां तुलसीजां धृतः। सजीवन्मुक्त इति श्रुतिपंचमःसंस्कारः॥ ५॥

अर्थात् जो विद्वान् शंख चक्र और तुलसी की माला धारण किए हैं वह जीवन्मुक्त हैं ऐसा वेद कहता है। यह पंचम संस्कार है। नारदपंचरात्र तथा पाराशरस्मृति में लिखा है।

पुण्ड्रं मुद्रा तथा नाम मंत्रोयागश्च पंचमः। अमी हि पंचसंस्काराः परमैकांतहेतवः॥

इति पंचसंस्कारसंस्कृतो यः सवैष्णवः नान्यथेति भावः स रामस्य दासो भवति दासोहमस्मि यो यं स्मरेत्सतद्रूपो भवति कीटभृंगन्यायेन स्वस्वरूपस्मरणात्तरति शोकमात्मविद्ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति।

अर्थात् ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक १ शंख चक्र धनुर्बाणादि धारण करना २ रामदास, कृष्णदासादिक भगवत्संबन्धी नाम रखना ३ मंत्रोपदेश ४ याग कहने से भगवत्पूजन संध्यातर्पणादि करना ५ यह पांच संस्कार परमवैष्णवों के लिए कहा है। इन पंचसंस्कारों से जो कोई संयुक्त है वही वैष्णव है दूसरा नहीं यह भाव है। वही रामजी का दास है। जो सर्वदा दासोहं दासोहं स्मरण करता है वह तद्रूप होजाता है। कीटभृंग न्याय से अपने स्वरूप को स्मरण करने से संसार पार हो जाता है। ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म के समान सखेत्व (सख्यत्व) धर्म को प्राप्त होता है।

अथ धामक्षेत्रम्।

विष्णुश्यामानुयायिनां सर्वदा शुभदायिनी। विष्णुकांची धर्मशाला मार्कण्डं क्षेत्रकं मतम्॥
इन्द्रद्युम्नविलासस्स्यात्सायुज्यं मुक्तिरुच्यते। जगन्नाथउपास्यस्स्यादिष्टा तु कमला तथा॥
श्रीतुलसीमंत्रः परस्त्रिपुरारिः शाखोच्यते। आचार्यो वामदेवश्च द्वारन्तु नयनं मतम्॥
पुरुषोत्तमाख्यं धामं चाहारो हरिनामकम्। सुनन्दः पार्षदः प्रोक्तो यजुर्वेदस्तथैव च॥
शुक्लवर्णोऽच्युतं गोत्रं वटे कृष्णपरिश्रमः। जलविंबशीर्षभवेन्नान्दिको देवता तथा॥
एतास्संज्ञाः शुभतरा वैष्णवानां तु सर्वदा॥

(भाषाधामक्षेत्रम्)

श्रीविष्णुस्वामी गुरु प्रणाम विष्णुकांची धर्मशाला मार्कण्डेय क्षेत्र इन्द्रद्युम्न सुखविलास सायुज्य मुक्ति लक्ष्मी इष्ट जगन्नाथउपासी तुलसी मंत्र त्रिपुरारि शाखा वामदेव आचार्य्य पुरुषोत्तम धाम नेत्र द्वार हरिनाम आहार सुनन्द पार्षद यजुर्वेद अच्युत गोत्र शुक्लवर्ण वटे कृष्ण परिक्रमा जलबिंब ऋषि नादिया देवता श्रीविष्णुस्वामी वैष्णवाः॥ १॥

(भाषाटीका)

श्रीविष्णु स्वामी गुरुको प्रणाम है। जिनकी विष्णुकांची धर्मशाला है। मार्कण्डेय क्षेत्र है। इन्द्रद्युम्न सुखविलास

रा० प०
है। सायुज्य मुक्ति है। लक्ष्मी इष्ट है। जगन्नाथजी के उपासक हैं। तुलसी मंत्र है। त्रिपुरारि शाखा है। वामदेवजी

है। सायुज्य मुक्ति है। लक्ष्मी इष्ट है। जगन्नाथजी के उपासक हैं। तुलसी मंत्र है। त्रिपुरारि शाखा है। वामदेवजी आचार्य्य हैं। पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) धाम है। नेत्र द्वार है। हरिनाम आहार है। सुनन्द पार्षद हैं। यजुर्वेद है। अच्युत गोत्र है। शुक्ल वर्ण है। वटे कृष्ण परिक्रमा है। जलविंब ऋषि हैं। नन्दीश्वर देवता हैं। यह सब जिनको हो वही विष्णु स्वामी अनुयायी वैष्णव हैं।

अब अथर्वणवेदीय आरक्ककेशि शाखा के पंचसंस्कार देखाते हैं। जोकि वैष्णवों को अवश्य धारण करना चाहिए।

ॐ हरिपादाकृतिं यो धारयति स महात्मा विष्णुप्रियो भवति इत्यथर्ववेदे प्रथमसंस्कारः ॥१॥

ॐ ऊर्ध्वपुण्ड्रं मस्तके धारयति स महात्मा दण्डकमण्डलुं धौतवस्त्रं पवित्रं हृदये भक्तिं गुरुवाक्यं च धारयति स जीवन्मुक्तो भवति इत्यथर्ववेदे द्वितीयः संस्कारः ॥ २ ॥

ॐ रामकृष्णहरिरितिषडक्षरमंत्रः इत्यथर्ववेदे तृतीयसंस्कारः ॥ ३ ॥

ॐ गंगास्नानं गंगोदकं रक्षावृत्तधारी इह आचार्यवान् निर्लोभी कन्दमूलाहारः स त्रैलोक्ये पूज्यो भवति इत्यथर्ववेदे चतुर्थः संस्कारः ॥ ४ ॥

ॐ सोहं हंस तत्त्वमसीति महावाक्यं मंत्रं शुक्लवर्ण गर्गऋषि माधवाचार्य्यैः सहविष्णु-स्मरणं स्वाहा इत्यथर्ववेदे पंचमसंस्कारः ॥ ५ ॥ तथाचागमे ॥

ॐ पुण्ड्रं मुद्रा तथा नाममाला मंत्रस्तु पंचमः। अमी हि पंचसंस्कारः पारमैकान्तहेतवः ॥
इति माधवाचार्य्यसम्प्रदायाथर्ववेदे पंचसंस्काराः ॥ ५ ॥

अर्थात् हरिपादाकार ऊर्ध्वपुण्ड्र जो धारण करते हैं वह महात्मा भगवान् को प्रिय होते हैं ॥ १ ॥ जो महात्मा मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक और दण्डकमण्डलु शुक्लवस्त्र तथा पवित्र हृदय में श्रीगुरुवचनों को धारण करते हैं वह जीवन्मुक्त होते हैं ॥ २ ॥ राम कृष्ण हरि यह छे अक्षर का परम मंत्र है इसको सर्वदा जपना चाहिए ॥ ३ ॥ अपने कल्याणार्थ जो गंगास्नान गंगाजल पान और गुरुसेवा में तत्पर हैं तथा कन्द मूल फल खाते हैं जिनको लोभ नहीं है वह तीनों लोक में पूज्य होते हैं ॥ ४ ॥ सोहं २ तत्त्वमसि यह महावाक्य मंत्र को शुक्लवर्ण गर्गऋषि श्रीमाधवाचार्यों के सहित विष्णुस्मरण करना चाहिए ॥ ५ ॥ तिलक १ शंखचक्र २ नाम ३ माला ४ और पंचम मंत्र यह पंचसंस्कार परम वैष्णव को धारण करना चाहिए यह श्रीमाधवाचार्यजी के अथर्वणवेदोक्त पंचसंस्कार कहा है ॥ ५ ॥

अब धामक्षेत्र कहते हैं ॥

श्रीमाधवानुयायिनां सर्वदा सुखदायिनी। अवंतिका धर्मशाला क्षेत्रं चैवांगपातकम् ॥
श्रीबद्रिकाश्रम धाम हंसस्तु देवता मता। विलासो नैमिषारण्यमिष्टा तु सावित्री मता ॥
उपास्यं परमं ब्रह्म सालोक्यं मुक्तिरेव च। श्रीविष्णुहंसमंत्रश्च द्वारन्तु वदनं भवेत् ॥
अद्वैतशाखासुखदाऽहारस्तु हरिनामकम्। शुक्लवर्णोऽच्युतं गोत्रमाचार्यस्त्रिकालो मतः ॥
नन्दाख्यः पार्षदश्चैवाथर्ववेदस्तथैव च। ऋषिः श्रीपरमहंसो वैष्णवानां तु सर्वदा ॥

श्रीमाधवाचार्यगुरु प्रणाम अवन्तिकापुरीधर्मशाला बद्रिकाश्रम धाम नैमिषारण्य सुखविलास अंगपात क्षेत्र सावित्रीइष्ट ब्रह्मउपासी विष्णु हंस मंत्र हंस देवता सालोक्य मुक्ति मुखद्वार त्रिकाल आचार्य अद्वैतशाखा अच्युतगोत्र शुक्लवर्ण हरिनाम आहार परमहंस ऋषि नन्द पार्षद अथर्वणवेद श्रीमाधवाचार्य्य वैष्णवाः ।

भाषा-टीका ।

श्रीमाधवाचार्य गुरु को प्रणाम है । जिनको अवंतिका (उज्जैन) पुरी धर्मशाला है । बद्रिनारायण धाम है। नैमिषारण्य सुखविलास है । अंगपात जो उज्जैन में है सोई क्षेत्र है । सावित्री इष्ट है । ब्रह्म के उपासक हैं । विष्णु हंस मंत्र है । हंस देवता है । सालोक्य मुक्ति है । मुख द्वार है त्रिकाल आचार्य है । अद्वैत शाखा है । अच्युत गोत्र है । शुक्ल वर्ण है । हरिनाम आहार है । परमहंस ऋषि है । नन्द पार्षद है । अथर्वण वेद है । यह सब जिनको हो वही श्रीमाधवाचार्य के अनुयायी वैष्णव हैं ।

इसके आगे चारों सम्प्रदाय का धामक्षेत्र लिखा है । सो प्राचीन पटल-पद्धति में नहीं मिलता है । जान परता है कि किसी ने बीच में बनाकर घुसेड़ दिया है । जबसे हमारे महानुभावों ने पटल-पद्धति को (बृहद्) अर्थात् विस्तार किया है तब से श्रीरामानुज गुरुप्रणाम आदि की पच्चीकारी की है, इसलिए इन सब बातों को नहीं मानना चाहिए । अब आगे वैष्णवों के दश लक्षण वर्णन करते हैं ।

भद्ररूपं तप्त चक्रं तुलसी गोपीमृत्तिका रामकृष्णमंत्रश्च शिखासूत्रं कमण्डलु ॥१॥ धौत-वस्त्रं गुरुर्वाक्यं दशलक्षण वैष्णवाः ॥ २ ॥

अर्थात् भद्ररूप से रहना १ तप्त शंख चक्र धनुष बाणादिक धारण करना २ तुलसी की माला ३ गोपीचन्दन ४ रामकृष्ण का मंत्र ५ और शिखा (चोटिया) रखनी ६ यज्ञोपवीत ७ कमण्डलु ८ शुक्ल वस्त्र धारण करना ९ श्रीगुरु-वचनों में विश्वास करना १० यह दश लक्षण वैष्णवों के हैं।

अब तिलक लगाने की विधि कहते हैं। पद्मपुराणे उत्तरखण्डे।

ॐ ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे। वक्षस्थले माधवं च गोविन्दं कण्ठकूबरे ॥ १ ॥
विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ तद्बाहौ मधुसूदनम्। त्रिविक्रमं कन्धरायां वामनं वामपार्श्वके ॥ २ ॥
श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशं तु कन्धरे। पृष्ठे तु पद्मनाभं च त्रिके दामोदरं न्यसेत् ॥ ३ ॥

अर्थात् ॐकंकेशवाय नमः इस मंत्र से ललाट में चार अंगुल का ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। ॐनंनारायणाय नमः इससे नाभी में दशांगुल धारण करे। ॐ मंमाधवाय नमः इससे वक्षस्थल पर आठ अंगुल धारण करे। ॐ गोंगोविन्दाय नमः इससे कण्ठ में चार अंगुल धारण करे। ॐ विंविष्णवे नमः इससे दहिनी कुक्षी (बगल) में दश अंगुल धारण करे। ॐ मंमधुसूदनाय नमः इससे दक्षिण बाहु में आठ अंगुल धारण करे। ॐ त्रिंत्रिविक्रमाय नमः इससे दक्षिण कंधे पर चार अंगुल धारण करे। ॐ वंवामनाय नमः इससे वामे कुक्षी (बगल) में दशांगुल धारण करे। ॐ श्रींश्रीधराय नमः इससे वाम बाहु में आठ अंगुल धारण करे। ॐ हंहृषिकेशाय नमः इससे कटि के पीठ में चार अंगुल धारण करे। ॐ दंदामोदराय नमः इससे पीठ के ऊपर चार अंगुल धारण करे। और हाथ धोकर ॐ वंवासुदेवाय नमः कह कर शिर पर लगाना चाहिए। यह द्वादश तिलक लगाने की विधि है।

रा० प०
द्वादशपुण्ड्राणि विप्राणां वैष्णवानां तथैव च। पुण्ड्रं धारयेद्विधिवद्धारिद्रासंयुतं शुभम् ॥ ४ ॥

द्वादशपुण्ड्राणि विप्राणां वैष्णवानां तथैव च । पुण्ड्रं धारयेद्विधिवद्धरिद्रासंयुतं शुभम् ॥ ४ ॥
यागो दानं तथा होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । भस्मी भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रंविनाकृतम् ॥ ५ ॥
सश्रियं तिलकं कुर्य्यात्सायुज्यादिफलप्रदम् । तस्य विष्णुर्भवेत्तुष्टो मुक्तिश्चैव करे स्थिता ॥ ६ ॥
श्रियमेकं तु यः कुर्य्यात्द्विरेखातिलकं विना । तस्य लक्ष्मीर्भवेद्रुष्टा धर्मादिश्च विनश्यति ॥ ७ ॥
शांतिदानामिकाप्रोक्ता मध्यमायुःकरी भवेत् । अंगुष्ठा पुष्टिदा प्रोक्ता तर्जनी मोक्षदायिनी ॥ ८ ॥

अर्थात् द्वादश तिलक ब्राह्मणों को और वैष्णवों को हल्दी की श्रीसहित विधिपूर्वक धारण करना चाहिए। यज्ञ, दान, होम, वेदाध्ययन, संध्या, तर्पण सब विना तिलक किए भस्म हो जाता है, इसलिए प्रथम तिलक करके सब कर्म करना चाहिए। श्रीके सहित तिलक करने से सायुज्यादि फल मिलता है उन पर भगवान् प्रसन्न होते हैं और मुक्ति तो उनके हाथ में रहती है। जो कोई विना द्विरेखा तिलक किए केवल (खाली) श्री लगा लेते हैं उनकी लक्ष्मी रुष्ट हो जाती है इससे उनके धर्मादिक सब नाश हो जाते हैं। सब सज्जनों से प्रार्थना है कि खाली श्री अथवा चन्दन से तिलक लगाना मत्था थोपना टीका लगाना मुख पोतनादि छोड़ देना चाहिए। सुंदर श्वेत मृत्तिका से तिलक करना चाहिए। तिलक करने में आलस नहीं करना चाहिए। अनामिका अंगुल से तिलक लगाने से शांति होती है मध्यमा से आयु बढ़ती है अंगुठा से पुष्टि होती है और तर्जनी से मोक्ष की प्राप्ति होती है। सो हमारे वैष्णवों में तर्जनी से तिलक लगाने की रीति स्पष्ट ही है। माला धारण विधि।

क्षालितां पंचगव्येन मूलमंत्रेण मंत्रितां। गायत्र्याद्याष्टकृत्वा वै मंत्रितां धूपयेच्चताम्॥
विधिवत् परमाभक्त्या सद्योजातेन पूजयेत्। संनिवेद्यैव हरये तुलसीकाष्ठसंभवाम्॥
मालां पश्चात्स्वयं धत्ते स वै भागवतोत्तमः। हरये नार्पयेद्यस्तु तुलसीकाष्ठसंभवाम्॥
मालां धत्ते स्वयं मूढः स याति नरकं ध्रुवम्॥

अर्थात् तुलसी की माला बनाकर पंचगव्य से स्नान करा कर राममंत्र से मंत्रित करके फिर गायत्री से आठ बार मंत्रित करके विधिवत् धूप दीपादिक से भक्तिपूर्वक पूजन करके भगवान् को समर्पण करे। पीछे स्वयं धारण करे वह वैष्णवोत्तम है। बिना भगवान् को अर्पण किए जो तुलसीमाला को धारण करता है वह मूर्ख निश्चयपूर्वक नरक में जाता है। माला बनाने की विधि और माला कितनी होनी चाहिए। कहां २ धारण करना चाहिए यह सब विषय विस्तार से ''वैष्णवकुलभूषणसारसंग्रह'' नामक ग्रंथ में वर्णन है। इससे सज्जन लोग उसे अवश्य देखें। माला धारण करने का मंत्र कहते हैं॥

तुलसीकाष्ठसंभूते माले विष्णुजनप्रिये। विभर्त्ति त्वामहं कण्ठे कुरु मां रामवल्लभम्॥
यथा त्वं वल्लभा विष्णोर्नित्यं विष्णुजनप्रिया। तथा मां कुरु देवेशि नित्यं विष्णुजनप्रियम्॥

अर्थात् हे माले आप भगवद्भक्तों को प्यारी हो इसलिए मैं भी आपको कण्ठ में धारण करता हूं हमें भी रामजी का

प्रिय कर दो। जैसे आप भगवान् को और भगवतभक्तों को प्यारी हो उसी प्रकार से मेरे को भी प्रिय करो। यह

प्रिय कर दो। जैसे आप भगवान् को और भगवत्भक्तों को प्यारी हो उसी प्रकार से मेरे को भी प्रिय करो। यह दो श्लोक विनयपूर्वक पढ़कर माला कण्ठी धारण करे। माला न धारण करने का दोष देखाते हैं। स्कन्दपुराणे।

यत्कण्ठे तुलसी नास्ति ते नरा मूढमानसाः। अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं पीयूषं रुधिरं भवेत्॥
ततः सर्वेषु कालेषु धार्य्या तुलसीमालिका। क्षणार्द्धं तद्विहीनोपि विष्णुद्रोही भवेन्नरः॥
यज्ञोपवीतवद्धार्य्या सदा तुलसीमालिका। क्षणमात्रपरित्यागाद्विष्णुद्रोही भवेन्नरः॥
पद्मपुराणे। ये कण्ठलग्नतुलसी नलिनाक्षमाला ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्राः।
ये बाहुमूलपरिचिह्नितशंखचक्रास्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयंति॥ १॥

अर्थात् जिस मूर्ख महा मलीन अंतःकरण वाले के कण्ठ में तुलसी की माला नहीं है उसके हाथ का अन्न विष्ठा है जल मूत्र है और अमृत रुधिर के समान है। इससे अवैष्णवों के हाथ का खाना पीना मना है। उससे सब काल में तुलसी की माला अर्थात् कण्ठी आदि धारण करे आधा क्षण त्यागने से भी विष्णुद्रोही होता है। यज्ञोपवीत के समान सर्वदा तुलसी की माला धारण करे। क्षणमात्र त्यागने से विष्णुद्रोही होता है। जो कण्ठ में लगा हुआ तुलसी और कमलाक्ष की माला धारण किए हैं। जो भाल में सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक दिये हैं और दोनों बाहुमूल में जिनको शंखचक्र का चिह्न है वे वैष्णव सब लोगों को शीघ्र ही पवित्र करते हैं। अब कुशपवित्र धारण करने की विधि कहते हैं।

अंगुल्यग्रे तपोवृद्धिर्मध्येचायुष्य संक्षयः। मूले कर्मविनाशःस्यात्तस्मान्मूले न धारयेत्॥ १२॥

दक्षिणे रेचयेद्वायुं वामेनापूरितोदरम् । कुम्भेन धारयेन्नित्यं प्राणायामं विदुर्बुधाः ॥
पीडयेद्दक्षिणां नाडीं अंगुष्टेन तथोत्तराम् । कनिष्ठाऽनामिकाभ्यां च मध्यमां तर्जनीं त्यजेत् ॥
अनामिकायवोमध्यस्तस्मादधः क्रमेण तु । तर्जन्यादौ जपान्ते च अक्षमाला करे स्थिता ॥
मध्यमायायवेपूर्वे जपकाले विवर्जयेत् । एतन्मेरुं विजानीयादुदितं ब्रह्मणा पुरा ॥

अर्थात् अनामिका अंगुल के अग्र भाग में कुशा धारण करने से तप की वृद्धि होती है मध्य में आयु नष्ट होती है अंगुल के मूल में धारण करने से कर्म नाश होता है उससे मूल में नहीं धारण करे। अब प्राणायाम की विधि कहते हैं।

दक्षिण नासिका से वायु निकासे बाईं से धीरे २ श्वास खींच कर उदर भरे और कुम्भक से धारण करे नित्य उसको पण्डितों ने प्राणायाम कहा है। प्राणायाम कैसे करे सो देखाते हैं।

अंगुठा से दहिनी नासिका दबावे तथा बाईं नासिका को अनामिका और कनिष्ठा दोनों से दबावे तर्जनी मध्यमा को छोड़ देवे ॥

अब अंगुल से मंत्रजप की विधि कहते हैं। अनामिका के मध्य पर्व से नीचे घूम कर तर्जनी अंगुल के आदि अर्थात् मूल तक जप का अंत है इसीको अक्षमाला-करमाला कहते हैं। मध्यमा का मूल पर्व जपकाल में छोड़ देवे क्योंकि यह सुमेरु है सुमेरु लांघना दोष है। यथा—

मेरुहीना च या माला मेरूल्लंघा च या भवेत्। अशुद्धप्रतिकाशा च सा माला निष्फला भवेत्॥
अष्टोत्तरशतं कुर्य्याच्चतुःपंचाशकं तथा। सप्तविंशतिकाः कार्य्यास्ततोनैवाधिकाहिताः॥

अर्थात् सुमेरुहीन जो माला है जो माला सुमेरु लंघन की हुई है और अशुद्ध माला गिनती हीन हो वह माला जपना निष्फल है॥ तुलसी की माला १०८ मणि के करना तथा ५४ मणि के अथवा २७ मणि की, सुमरनी करना उससे अधिक नहीं करना चाहिए। यह आचार माधव और याज्ञवल्क्यजी का सिद्धान्त है॥ ततोघमर्षणं कुर्यात्॥

अथ श्रीभगवत्कैंकर्यसिद्ध्यर्थमघमर्षणसंध्यामहं करिष्ये।

यह संकल्प पढ़ कर आचमन और प्राणायाम करके मूल मंत्र पढ़ करके दहिने हाथ से जल लेकर दहिनी नासिका में स्पर्श कराकर दहिनी ओर हाथ झुकाकर धीरे २ जल को गिरा देवे। फिर ॐनमः इस मंत्र से अंजली में जल लेकर दहिना हाथ के जल को वामा हाथ से ढांक कर आठ बार ॐजानकीवल्लभाय स्वाहा। इस मंत्र से अथवा राममंत्र से अभिमंत्रित करके जल को पी जावे। पुनः वहां पर ॐविष्णुः ॐविष्णुः ॐविष्णुः इस आचमन के मंत्र से तीन आचमन करके दक्षिण हाथ में जल लेकर वामा हाथ से ढांक कर। ॐनमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुर-प्रसन्नवदनायामिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः। ॐक्लींतेजसेरांतारकब्रह्म स्वाहा। इस मंत्र से एक बार मंत्रित करके वह जल वामा हाथ में धरके अंगुल के छिद्र से धीरे २ गिराते हुए जलविन्दु से मूल मंत्र आठ बार पढ़ कर शरीर को मार्जन करके पुनः उसी प्रकार से दहिने हाथ में जलको लेकर वाम हाथ से ढांक कर। ॐनमो भगवते इस मंत्र से एक बार मंत्रित करके दहिनी नासा के छिद्र से सुँघा कर वह जल शरीर के भीतर का सब पाप धोकर निकाल देता

है । इसलिए उस कृष्ण (काले) वर्ण वाले पाप को ध्यान करके बाईं नासिका से निकला फिर मेरे हाथ में आ गया ऐसी भावना करके उस पाप को बाईं ओर मन कल्पित वज्रशिला के ऊपर ॐ रः अस्त्रायफट् । इस मंत्र से दृढ़ करके पटक मारे यह अघमर्षण हुआ ॥ अब भूतशुद्धि कहते हैं ॥

श्रीरामाराधनयोग्यतासिद्ध्यर्थंभूतशुद्धिमहममुकदासःकरिष्ये इति संकल्पः ।

यह संकल्प करके ॐविष्णुः ॐविष्णुः ॐविष्णुः से आचमन करके प्राणायाम करना । फिर कच्छपि मुद्रा से हृदय में स्थित दीपकर्णिकाकार जीव ज्योति को पर स्वरूप के समूह तेज में चिंतवन करके वहीं पर पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, त्रिधाहंकार, महत्तत्त्व और मूलप्रकृति इन सब तत्त्वों के स्वरूप चिंतवन करके बाईं कुक्षी में कृष्णवर्ण वाले पाप पुरुष के रूप को ध्यान करके यंरंवंशंलंहं । यं यह वायु बीजमंत्र से शरीर का पाप शोषण होता है । रं यह अग्निबीज मंत्र से शरीर का पाप भस्म होता है । वं यह वरुण बीजमंत्र से भस्म उचाटन होता है । शं यह चन्द्र बीजमंत्र से अमृत की वृष्टि होती है उससे शरीर की उत्पत्ति होती है यह भावना करे । लं यह पृथिवी बीजमंत्र से शरीर को दृढ़ करके । हं यह आकाश बीजमंत्र से देह के छिद्रों की भावना करे । एक एक बीजमंत्र को जपे पूरक १६ कुंभक ६४ रेचक ३२ यं से पूरक रं से कुम्भक वं से रेचक पुनः शं से पूरक लं से कुम्भक हं से रेचक इस प्रकार ६ वों बीज से प्राणायाम करे अथवा पूरक ६ कुम्भक ३६ रेचक १८ ऐसा दो प्राणायाम करना यह भूतशुद्धि कहा ।

अथ प्राणप्रतिष्ठामंत्रस्यब्रह्मविष्णुमहेश्वराऋषयः ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि प्राणशक्तिर्देवता आं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रौं कीलकम् प्राणप्रतिष्ठार्थे जपे विनियोगः इति संकल्पः ॥

यह संकल्प करके तीन आचमन और प्राणायाम करे फिर ॐप्राणप्रतिष्ठामंत्राय नमः कह कर शिर । ॐब्रह्माविष्णुमहेश्वराय ऋषये नमः कह कर भ्रूके मध्य में । ॐऋग्यजुः सामानि छंदांसि नमः कह कर मुख में । ॐप्राणशक्तिर्देवतायै: नमः कह कर हृदय में । ॐआंबीजाय कह कर दहिना हाथ में । ॐह्रींशक्तये नमःकह कर वामा हाथ में ॐक्रौंकीलकाय नमः कह कर नाभी में । ॐप्राणप्रतिष्ठायै नमः कह कर दोनों पद में । जपे विनियोगाय नमः कह कर सर्वांग में मूलमंत्र से करन्यास और हृदयादि न्यास करे । तब हृदय में हाथ देकर बोले ।

ॐआंह्रींक्रौंयंरंलंवंशंषंसंहंहंसः सोहं मम प्राणा इहा तिष्ठन्तु स्वाहा ॥ ॐआंह्रींक्रौंयंरंलंवंशंषंसंहंहंसः सोहं मम जीव इहास्थितः स्वाहा । ॐआंह्रींक्रौंयंरंलंवंशंषंसंहंहंसः सोहं मम सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणागत्यसुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।

यह पढ़ कर हृदय को स्पर्श करके द्वादश १२ बार ॐकार जप कर यथोचित संस्कार की भावना करे । यह प्राणप्रतिष्ठा की विधि है । अब गायत्री की विधि कहते हैं । आवाहन १ संकल्प २ ऋष्यादिन्यास ३ करन्यास ४ अंगन्यास ५ पदन्यास ६ अक्षरन्यास ७ ध्यान ८ जप ९ विसर्जन १० यह यथाक्रम से देखाते हैं ।

ॐअस्य श्रीरामगायत्रीमंत्रस्य वामदेवऋषिः गायत्रीछन्दः श्रीजानकीवल्लभो देवता श्रीरामेतिबीजं दाशरथायेतिशक्तिः रामाय कीलकं गायत्र्यावाहने जपे विनियोगः इति संकल्पः ।

यहां तीन आचमन और प्राणायाम करके ॐरामगायत्रीं सूर्यमण्डलादावाहयाम्यहं देवीं अर्थात् सूर्यमण्डल से आवाहन करे हाथ उठा कर बोले ।

ॐआगच्छ वरदे देवि त्रिपदे रामवादिनि । गायत्रिछन्दसां माता रामयोने नमोस्तुते ॥ १ ॥
ॐतेजोसिशुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि। इत्यावाहनम्।

इस प्रकार से आवाहन करके श्रींसीतायै स्वाहा । इस मंत्र से आसन देकर पीछे पाद्य अर्घ आचमनी आदि षोडशोपचार से मानसिक पूजन करके मुद्रा देखावे। अब मुद्रों के नाम कहते हैं ।

सुमुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा । एकमुखं च द्विमुखं त्रिमुखं च चतुर्मुखम् ॥
पंचमुखं षण्मुखं च ऊर्ध्वांजलिमधोमुखम् । शकटं यमपाशं च ग्रथितं सम्मुखोन्मुखम् ॥
प्रलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यकूर्मवराहकम् । सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥

अर्थात् सुमुख १ संपुट २ वितती विस्तृत ३ एकमुख ४ द्विमुख ५ तीनमुख ६ चारमुख ७ पंचमुख ८ छमुख ९ ऊर्ध्वांजलि १० अधोमुख ११ शकट १२ यमपाश १३ सम्मुख १४ उन्मुख १५ प्रलम्ब १६ मुष्टिक १७ मत्स्य १८ कूर्म १९ वाराह २० सिंहाक्रान्त २१ महाक्रान्त २२ मुद्गर २३ पल्लव २४ यह चौबिस मुद्रा गायत्री के आदि में कहे हैं इनके बिना जाने गायत्री जप निष्फल हो जाता है । इसलिए अवश्य जानना चाहिए । यह मुद्राविधि है ।

अथ रामगायत्री ।

ॐदाशरथायविद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नोरामःप्रचोदयात् ॥

ॐकारस्य जानकीऋषिः गायत्रीछन्दः श्रीरामोदेवता रांबीजं नमःशक्तिः रामाय कीलकं श्रीरामप्रीत्यर्थेजपेविनियोगः इति संकल्पः ।

ॐकारस्य जानकीऋषये नमः शिरसि गायत्रीछंदसे नमः मुखे श्रीरामोदेवतायै नमः हृदि रांबीजाय नमः गुह्ये नमः शक्त्यै नमः पादयोः रामकीलकाय नमः सर्वांगे ॥ इतिऋष्यादिन्यासः ॥ ॐदाशरथाय अंगुष्ठाभ्यां नमः विद्महे तर्जनीभ्यां नमः ॐसीतावल्लभाय मध्यमाभ्यां नमः ॐधीमहि अनामिकाभ्यां नमः ॐतन्नोरामः कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॐप्रचोदयात्करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः इतिकरन्यासः । ॐदाशरथाय हृदयाय नमः ॐविद्महेशिरसेस्वाहा ॐसीतावल्लभाय शिखायैवषट् ॐधीमहि कवचाय हुं ॐतन्नोरामःनेत्राभ्यां वौषट् ॐप्रचोदयात् अस्त्राय फट् इतिअंगन्यासः ॥ ॐदाशरथाय मूर्ध्नि ॐविद्महे भ्रुवोर्मध्ये ॐसीतावल्लभाय हृदये ॐधीमहि नाभौ ॐतन्नोरामः लिंगे ॐप्रचोदयात्पादयोः ॥ इतिपदन्यासः ॥ ॐदाकारं पादतलयोः ॐशकारं पादांगुष्ठयोः ॐरकारं गुल्फयोः ॐथाकारं जान्वोः ॐयकारं जंघयोः ॐविकारं ऊर्वोः ॐद्मकारं गुदे ॐहेकारं लिंगे ॐसाकारं कट्यां ॐताकारं नाभौ ॐवकारं उदरे ॐल्लकारं स्तनयोः ॐभाकारं हृदये ॐयकारं कण्ठे ॐधीकारं मुखे ॐमकारं तालु-

देशे ॐहिकारं नासिकाग्रे ॐतकारं नेत्रयोः ॐन्नोकारं भ्रुवोर्मध्ये ॐराकारं ललाटे ॐमःकारं पूर्वदिशि ॐप्रकारं दक्षिणदिशि ॐचोकारं पश्चिमदिशि ॐदकारं उत्तरदिशि ॐयाकारं मूर्ध्नि ॐत्कारं व्यंजनं सर्वव्यापकं इत्यक्षरन्यासः ॥

भाषानुवाद ।

यह संकल्प करके तीन आचमन और प्राणायाम करके फिर ॐकारस्यजानकीऋषये नमः कह कर शिर में । गायत्री-छन्दसे नमः कह कर मुख में । श्रीरामायदेवतायै नमः कह कर हृदय में । रांबीजाय नमः कह कर नाभी में । नमः शक्त्यै नमः कह कर दोनों पद में । रामाय कीलकाय नमः कह कर सर्वांग में न्यास करे । यह ऋष्यादिन्यास है ।

ॐदाशरथाय अंगुष्ठाभ्यां नमः कह कर दोनों अंगूठा । विद्महे तर्जनीभ्यां नमः कहकर दोनों तर्जनी । सीतावल्लभाय मध्यमाभ्यां नमः कह कर दोनों मध्यमा अंगुली । धीमहि अनामिकाभ्यां नमः कह कर दोनों अनामिका । तन्नोरामः कनिष्ठिकाभ्यां नमः कह कर दोनों कनिष्ठिका । प्रचोदयात्करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः कह कर दोनों करपृष्ठ को । यह करन्यास है । ॐदाशरथाय हृदयाय नमः कह कर हृदय को । विद्महे शिरसे स्वाहा कह कर शिर को । सीतावल्लभाय शिखायै वषट् कह कर शिखा को । धीमहि कवचाय हुं कह कर दोनों पार्श्व । तन्नोरामः नेत्रत्रयाय वौषट् कह कर नेत्र । प्रचोदयात् अस्त्रायफट् कह कर वामा करतल पर ज्ञानमुद्रा से तीन वार स्फोट कर अंगुली ध्वनि करते हुए शिर पर हाथ घुमाना चाहिए । इसको अंगन्यास कहते हैं । यह करके फिर प्राणायाम को करके । ॐदाशरथाय कह कर शिर में ।

विद्महे, कह कर भौंह के मध्य में। सीतावल्लभाय, कह कर हृदय में। धीमहि, कह कर नाभी में। तन्नोरामः, कह कर लिंग में। प्रचोदयात्, कह कर दोनों पद में न्यास करे यह पदन्यास है।

ॐदाकारं से दोनों पादतल। ॐशकारं से दोनों पदांगुष्ठ। ॐरकार दोनों गुल्फ। ॐथाकार दोनों जानु। ॐयकार दोनों जंघा। ॐविकार दोनों उरुस्थल में। ॐद्मकार, गुदामें। ॐहेकार, लिंग में। ॐसीकार, कटि में। ॐताकार, नाभी में। ॐवकार, उदर में। ॐल्लकार, दोनों स्तन में। ॐभकार, हृदय में। ॐयकार, कण्ठ में। ॐधीकार, मुख में। ॐमकार, तालु देश में। ॐहिकार, नासाग्र में। ॐतकार, दोनों नेत्र में। ॐन्नोकार, भ्रु के मध्य में। ॐराकार, ललाट में। ॐमकार, पूर्वदिशि में। ॐप्रकार, दक्षिण दिशि में। ॐचोकार, पश्चिम दिशि में। ॐदकार, उत्तर दिशि में। ॐयाकार, मूर्ध्नि में। व्यंजन तकार सर्वव्यापी अर्थात् सर्वत्र जानो यह अक्षरन्यास हुआ।

फिर आचमन और प्राणायाम करके ध्यान करे।

अथ ध्यानम्।

ॐहस्तद्वयेन कमलं धारयन्तीं स्वलीलया। हारनूपुरसंयुक्तं लक्ष्मीं देवीं विचिन्तयेत्॥

अर्थात् दोनों हाथ से कमल को अपनी लीला से धारण किए हैं हार नूपुर के सहित लक्ष्मी देवी को चिंतवन करे। ध्यान करके नित्य नेम से एक सहस्र गायत्री जपे अथवा तीन माला नहीं तो एक माला तो अवश्य जपे।

वह गायत्री मंत्र जप करके अन्त में फिर तीन आचमन और षडंगन्यास करे। ॐवाक् ॐवाक् ॐप्राणः ॐप्राणः ॐचक्षुः ॐचक्षुः। यह षडंगन्यास है। फिर प्राणायाम करके आठ मुद्रा देखावे।

मुद्रा कहते हैं।

सुरभीज्ञानवैराग्यं योनिःकूर्मोथपंकजम्। लिंगनिर्वाणमुद्राश्च जपान्तेऽष्टौप्रदर्शयेत्॥

अर्थात् सुरभी १ ज्ञान २ वैराग्य ३ योनि ४ कूर्म्म ५ कमल ६ लिंग ७ निर्वाण ८ यह आठौं मुद्रा जप के अन्त में देखावे। फिर स्तुति करे स्तुति इन श्लोकों से करे।

ॐवन्दे लक्ष्मीं परशिवमयीं शुद्धजाम्बूनदाभां तेजोरूपां कनकवसनां सर्वभूषोज्वलांगीम्। बीजापूरं कनककलशं हेमपद्मं दधानामाद्यां शक्तिं सकलजननीं विष्णुवामांकसंस्थाम्॥ १॥

ॐयाहि देवि वेदमातः सूर्यसदृशवर्चसम्। प्रविश्य परमात्मानं ज्योतिरूपं नमोस्तुते॥

इस मंत्र से गायत्री मंत्र विसर्जन करके आचमन और प्राणायाम तथा षडंगन्यास करे। फिर तर्पण करना चाहिए।

तर्पणम्।

ॐअस्मद्गुरुंस्तर्पयामि। ॐअस्मत्परमगुरुंस्तर्पयामि। ॐअस्मत्सर्वगुरुंस्तर्पयामि। ॐनमोभगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मने संयोगपीठात्मकं श्रीरामं सन्तर्पयामि। राममंत्र पढ़ कर श्रीरामं संतर्पयामि। ऐसाही २८ बार तीर्थोदक से राममंत्र पढ़ कर तर्पण करे। श्रीजानकी आदि को तर्पण करे। श्रींसीतायै स्वाहा। इस मंत्र से श्रीसीतां सन्तर्पयामि। ॐलंलक्ष्मणाय नमः इस मंत्र से श्रीलक्ष्मणं संतर्पयामि। ॐभंभरताय नमः इस मंत्र से श्रीभरतं संतर्पयामि। ॐशंशत्रुघ्नाय नमः इस मंत्र से श्रीशत्रुघ्नं संतर्पयामि। ॐशंशार्ङ्गाय नमः इस मंत्र से श्रीशार्ङ्गं संतर्पयामि।

ॐशंशरेभ्यो नमः इस मंत्र से श्रीशरांस्तर्पयामि । अंत में पूर्ण अंजली जल देकर ॐहंहनुमते नमः इससे श्रीहनुमन्तं संतर्पयामि । ॐवंवरुणाय नमः इस मंत्र से श्रीवरुणं तर्पयामि ।

सूर्य को अर्घ देने का मंत्र ।

एहि सूर्यसहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते । अनुकंपय मां भक्त्या गृहाणार्घं दिवाकर ॥

यह पढ़ कर गायत्री से तीन अर्घ सूर्य्य को देवे । ॐसूर्याय नमः इस मंत्र से श्रीसूर्य को तर्पण करे । फिर ॐनमो रामाय श्रीजानकीवल्लभाय नमः । इस मंत्र से तीन बार श्रीरामजी को तर्पण करे । फिर माता पिता दादा परदादादि को तर्पण करे । पीछे बोले कि आप सब तीर्थ सूर्यमण्डल से आए हुए सूर्यमण्डल को जाइए । सूर्यगायत्री कहते हैं ।

ॐभास्कराय विद्महे महातेजाय धीमहि तन्नःसूर्यः प्रचोदयात् । इति सूर्यगायत्री ॥

ॐश्रीविष्णुतेजसे महाज्वालाय मणिकुण्डलाय स्वाहा ॥

इस मंत्र से सूर्य को तर्पण करे । ऐसा यह सन्ध्या वन्दनादि को समाप्त करके श्रीराममंत्र को विधिपूर्वक साधन करे । मंत्र जपने के प्रथम संकल्प करना चाहिए ।

संकल्प ।

ॐअस्य श्रीषडक्षरस्य श्रीराममंत्रस्य श्रीजानकीऋषिः गायत्रीछंदः श्रीरामोदेवता रांबीजं नमःशक्तिः रामाय कीलकं इष्टार्थे जपे विनियोगः । इति संकल्पः ॥

सब सज्जनों से सविनय प्रार्थना है । यहां पर संकल्प में श्रीराम मंत्रराज का श्रीजानकी ऋषि लिखा है । इससे

यह सर्वथा निश्चय होता है कि श्रीराम मंत्र का भूमण्डल में श्रीजानकीजी के ही द्वारा प्रचार हुआ है। यदि ऐसा न होता तो श्रीजानकीजी को ऋषि कभी न लिखते और निरुक्त में लिखा है कि "ऋषयोमंत्रदृष्टयः" अर्थात् मंत्र मंत्रार्थ का जो विचार प्रचार करे वह ऋषि होते हैं। इससे श्रीराममंत्र का प्रचारक ऋषि श्रीजानकीजी हैं। श्रीजानकीजी ने श्रीहनुमान्जी को दिया हनुमान्जी ने ब्रह्माजी को ब्रह्माजी ने वशिष्ठजी को उन्होंने पराशरजी को पराशरजी ने वेदव्यासजी को उन्होंने अपने पुत्र श्रीशुकदेवजी को श्रीशुकदेवजी ने श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी को उन्होंने श्रीगंगाधराचार्यजी को उन्होंने श्रीसदाचार्यजी को उन्होंने श्रीरामेश्वराचार्यजी को उन्होंने श्रीद्वारानन्दजी को उन्होंने श्रीदेवानन्दजी को उन्होंने श्रीश्यामानन्दजी को उन्होंने श्रीश्रुतानन्दजी को उन्होंने श्रीचिदानन्दजी को उन्होंने श्रीपूर्णानन्दजी को उन्होंने श्रीश्रियानन्दजी को उन्होंने श्रीहर्य्यानन्दजी को उन्होंने श्रीराघवानन्दजी को उन्होंने श्रीरामानन्दस्वामी जी को मंत्रराज दिया। श्रीरामजी के अवतार श्रीरामानन्दस्वामीजी के १२ शिष्य हुए। श्रीब्रह्माजी श्रीअनन्तानन्दजी के अवतार। श्रीनारदजी श्रीसुरसुरानन्दजी के। श्रीशिवजी श्रीसुखानन्दजी के। श्रीसनत्कुमारजी श्रीनरहरियानन्दजी के श्रीकपिलदेवजी, श्रीयोगानन्दजी के श्रीमनुजी, श्रीपीपाजी के श्रीप्रह्लादजी, श्रीकवीरदासजी के श्रीजनकजी, श्रीभावानन्दजी के श्रीभीष्मजी, श्रीसेनाभक्तजी के श्रीवलिजी श्रीधनाजी के श्रीशुकदेवजी, श्रीगालवानन्दजी के श्रीयमराजजी श्रीरैदासजी के अवतार हुए। और स्वयं श्रीलक्ष्मीजी श्रीपद्मावतीजी के अवतार होकर श्रीस्वामीजी की शिष्या (चेली) हो गईं। यह सब कथा अगस्त्यसंहितांतर्गत श्रीरामानन्द जन्मोत्सव ग्रंथ में लिखी है। सब सज्जनों को अवश्य देखना चाहिए। यही गुरुपरंपरा श्रीअग्रस्वामीजी ने लिखी है जिसको कि उज्जैनकुंभ पर सब पंचों ने स्वीकार करके हस्ताक्षर किया है। यह तो सब सज्जनों को विदित ही है।

हमारे श्रीपूर्ण वैराठीजी के द्वारा की गुरुपरंपरा श्रीअनन्तानन्दजी से भिन्न हुई है सो ऐसी है । श्रीअनन्तानन्द जी के शिष्य श्रीगैसदासजी, उनके श्रीखेमदासजी (पांगुला) हुए आप पंगुल रहे इसीसे खेमदास पांगुला कहे जाते रहे । उनके श्रीपूर्णवैराठी (वैरागी) जी हुए हैं । आप पूर्ण वैराग्यवान् रहे इसीसे आपको पूर्ण वैरागीजी सब संत कहते रहे । कहते कहते कुछ दिनों में पूर्णवैरागी का पूर्ण वैराठी होगया । यथार्थ में पूर्णवैरागीजी नाम है । आप बड़े सिद्ध रहे आप गवालियर में स्थान बनाकर भजन करने लगे वही बड़ी शाला स्थान प्रसिद्ध है । उसीसे छोटी शाला पीछे बनी है । श्रीपूर्णवैरागीजी के श्रीपरमानन्दजी और श्रीगुंजारदासजी दो शिष्य प्रधान रहे । दोनों से दो शाखें हुई हैं । श्रीगुंजारदासजी के श्रीकृष्णदासजी हुए । उनके श्रीनारायणदासजी । उनके श्रीगोपालदासजी । उनके श्रीदामोदरदासजी । उनके श्रीलक्ष्मीदास जी । उनके श्रीआनन्दराम जी । उनके श्रीतुलसीदास जी । उनके श्रीविष्णुदासजी । उनके श्रीहरिभजनदासजी । उनके श्रीमहादासजी निर्वाणी हुए । आप आकर श्रीहनुमानगढ़ी उज्जनियां पट्टी में रहने लगे इसीसे निर्वाणी पदवी मिली । आपके शिष्य श्रीअयोध्यादासजी हुए । उनके श्रीजानकीदासजी हुए । आप बहुत दिनों तक गढ़ी में रह कर संयोगवश होकर श्रीगंगाजी के तट पर शहर भागलपुर में स्थान बना कर भजन करने लगे । आपके प्रधान दो शिष्य हुए । बड़े शिष्य श्रीनरसिंहदासजी हुए जिनके शिष्य श्रीबलदेवदासजी पहलवान श्रीहनुमान्गढ़ी में वर्तमान हैं । छोटे शिष्य मम स्वामी पण्डितराज श्रीमणिरामदासजी महाराज स्थान भागलपुर राजमंदिर उलाव में विराजे हैं । सरजूदास का शिष्य रामदास गोगरिजमालपुर में उपस्थित है । दूसरी शाखा ऐसी है कि श्रीपूर्णवैरागीजी के श्रीपरमानन्दजी, उनके श्रीकल्याणदासजी, उनके श्रीश्यामलदासजी, उनके श्रीगोवर्द्धनदासजी ग्वालरिया हुए । आपके श्रीहृदयरामदासजी और श्रीसंतदासजी

पैहारी दो शिष्य रहे। बड़े शिष्य तो ग्वालियर गादी के अधिपति हुए। श्रीसंतदास जी पैहारी आकर के श्रीगंगाजी के तट पर साभों में बैठकर भजन करने लगे। उनके शिष्य श्रीहीरादासजी, उनके श्रीमनोहरदासजी जोकि लोधौना में बैठे। उनके श्रीकमलदासजी हुए, उनके श्रीहनुमानदासजी हुए जो शेरनियां में बैठे, उनके शिष्य श्रीत्रिवेणीदासजी हुए, जिनके शिष्य नागा श्रीकामतादासजी श्रीहनुमानगढ़ी में वर्तमान हैं।

जो कोई कहते हैं कि हमारी गुरुपरंपरा श्रीरामानुजीय वैष्णवों से है। यह कहना बिलकुल झूठ है। और लक्ष्मी जी से राममंत्र की परंपरा मानना अथवा कहना सो भी झूठ ही है। हमारी परंपरा श्रीजानकीजी से है। श्रीजानकी जी को भी श्रीनाम से शास्त्र में कहा है। इसलिए श्रीसम्प्रदाय हमारा है। चारों सम्प्रदाय में श्रीरामानुज स्वामीजी नहीं हैं। श्रीरामानन्द स्वामी ही का नाम आता है। देखिए रामपटल में लिखा है।

रामानन्दोनिम्बादित्यो विष्णुश्यामः श्रीमाधवः। चत्वारो धर्मशीलाश्च जगति धर्मस्थापकाः। एतेषामनुयायीनां द्विपञ्चाशाद्विजज्ञिरे॥

अर्थात् श्रीरामानन्द, श्रीनिम्बार्क, श्रीविष्णुश्याम, श्रीमध्वाचार्य, यही चारों धर्मशील संसार में धर्मस्थापक हैं। इन्हीं के परिवारों ने ५२ द्वारा स्थापित किए हैं। इस वचन से स्पष्ट विदित होता है कि पटल, पद्धति में चारों सम्प्रदाय की गिनती में श्रीरामानन्दस्वामी ही का नाम होना चाहिए। श्रीरामानुजस्वामी का नहीं। क्योंकि उन लोगों से हमारे चारों भाइयों को कुछ संबन्ध नहीं है। उन लोगों ने हमारे इष्ट मंत्रों की घोर निंदा की है। विशेष कहांतक प्रार्थना करें। चारों सम्प्रदाय के महानुभावों को विशेष देखना हो तो हमारा बनाया "श्रीराममंत्र परम वैदिक सिद्धांत"

नामक ग्रन्थ को देखिए। उसमें परंपरा मंत्र मंत्रार्थ सब विषय सप्रमाण वर्णन किए हैं। आपको एक ही पुस्तक से सब विषय मालूम हो जायगा। प्रथम यह पुस्तक छोटी छपी रही। अबकी विस्तार से छपी है। श्रीराममंत्र का ऋषि श्रीजानकीजी हैं। इन्हीं से श्रीराममंत्र का प्रचार हुआ है यही मानना चाहिए। यह बात बड़े २ प्राचीन ग्रंथों में और पटल, पद्धतियों में लिखी है। सब बातें श्रीराममंत्र परम वैदिक में लिखदी गई हैं इस ग्रंथ को विशेष प्रचार कीजिए। यह बिनती है॥

ॐअस्य श्रीषडक्षरस्य श्रीराममंत्रस्य श्रीजानकी ऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीरामोदेवता रांबीजं नमः शक्तिः रामाय कीलकं श्रीसीतारामप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः॥ इति संकल्पः॥

ॐजानकीऋषये नमः शिरसि। ॐगायत्रीछन्दसे नमः मुखे। ॐरामोदेवतायै नमः हृदि। ॐरांबीजाय नमः गुह्ये। ॐनमःशक्तये नमः पादयोः। ॐरामाय कीलकाय नमः सर्वांगे। इति ऋष्यादिन्यासः॥ ॐरांरींरूंरैंरौंरः॥ ॐरांअंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐरींतर्जनीभ्यां नमः। ॐरूंमध्यमाभ्यां नमः। ॐरैंअनामिकाभ्यां नमः। ॐरौंकनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐरःकरतलकरपृष्ठाभ्यां नमः॥ इति करन्यासः॥ ॐरांहृदयाय नमः। ॐरींशिरसे स्वाहा। ॐरूंशिखायैवषट्। ॐरैं कवचायहुं। ॐरौंनेत्राभ्यांवौषट्। ॐरःअस्त्रायफट्॥ इत्यंगन्यासः॥ ततःतालत्रयं कृत्वा मूल मंत्रेण दशदिग्बन्धनं कृत्वा॥ ॐरांरक्षतु प्राच्यां। ॐरांरक्षतु दक्षिणे। ॐरांरक्षतु प्रतीच्यां।

ॐरांरक्षतु उदीच्यां। ॐरांरक्षतु आग्नेय्यां। ॐरांरक्षतु नैर्ऋत्यां। ॐरांरक्षतु वायव्यां। ॐरांरक्षतु ईशान्यां। ॐरांरक्षतु ऊर्ध्वं। ॐरांरक्षतु अधोमां॥ इति दिग्बन्धनम्॥ ॐरां नमोमूर्ध्नि। ॐरामाय नमः नाभौ। ॐनमोनमः पाद्योः॥ इति पदन्यासः॥ ॐरांनमोमूर्ध्नि। ॐरांनमो भ्रुवोर्मध्ये। ॐमांनमो हृदि। ॐयंनमो नाभौ। ॐनंनमो गुह्ये। ॐमःनमः पादयोः॥ इति अक्षरन्यासः॥

श्रीराममंत्रराज की विधि कहते हैं।

पूर्वोक्त संकल्प करके ॐविष्णुः ३ इस मंत्र से तीन आचमन कर प्राणायाम करे। बाद ॐजानकी ऋषये नमः कहकर शिर में। गायत्री छन्दसे नमः कहकर मुख में। श्रीरामो देवतायै नमः कहकर हृदय में। रांबीजाय नमः कहकर नाभी में। नमः शक्तये नमः कहकर गुह्येन्द्रिय में। रामाय कीलकाय नमः कहकर दोनों पद में। जपे विनियोगाय नमः कहकर सर्वांग में न्यास करे। यह ऋष्यादि न्यास है। ॐ रां रीं रूं रैं रौं रः ॐ रां अंगुष्ठाभ्यां नमः कहकर दोनों अंगुष्ठों को। ॐ रीं तर्जनीभ्यां नमः कहकर दोनों तर्जनी को। ॐरूंमध्यमाभ्यां नमः कहकर दोनों मध्यमा को। ॐ रैं अनामिका-भ्यां नमः कहकर दोनों अनामिका को। ॐ रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः कहकर दोनों कनिष्ठिका को। ॐ रः करतलकर-पृष्ठाभ्यां नमः कहकर दोनों करतल पीठको संशोधन करे। इसको करन्यास कहते हैं।

ॐ रां हृदयाय नमः कहकर हृदय को ॐ रीं शिरसे स्वाहा कहकर शिर को ॐ रुं शिखायैवषट् कहकर शिखा को।

ॐ रां हृदयाय नमः कहकर हृदय को ॐ रीं शिरसे स्वाहा कहकर शिर को ॐ रूं शिखायैवषट् कहकर शिखा को ।

ॐ रैं कवचायहुं कहकर दोनों पार्श्व को। ॐ रौं नेत्राभ्यांवौषट् कहकर दोनों नेत्रको । ॐ रः अस्त्रायफट् कहकर ज्ञानमुद्रा से तीनबार वामाकरतल पर मार शिरपर हाथ घुमाना चाहिए । इत्यंगन्यासः यह अंगन्यास है । फिर तीन ताल करके राममंत्र से दशोदिग्बंधन करे । ॐ रां रक्षतु प्राच्यां कहकर पूर्व को । ॐ रां रक्षतु दक्षिणे कहकर दक्षिण में। ॐ रां रक्षतु प्रतीच्यां कहकर पश्चिम दिशि । ॐ रां रक्षतु उदीच्यां कहकर उत्तर दिशि को। ॐ रां रक्षतु आग्नेयां कहकर अग्निकोण को । ॐ रां रक्षतु नैर्ऋत्यां कहकर नैर्ऋतिकोण। ॐ रां रक्षतु वायव्यां कहकर वायुकोण को। ॐ रां रक्षतु ईशान्यां कहकर ईशानकोण को । ॐ रां रक्षतु ऊर्ध्वं कहकर ऊपर को । ॐ रां रक्षतु अधोमाम् कहकर नीचे को रक्षा करे यह दिग्बंधन है। ॐ रां नमो कहकर शिर ॐ रामाय नमः कहकर नाभी में । ॐनमोनमः कहकर दोनों पद यह पदन्यास है । ॐ रां नमोमूर्ध्नि कहकर शिर ॐरांनमो कहकर भौंह के मध्य ॐमांनमो कहकर हृदय में । ॐ यं नमो कहकर नाभि में । ॐ ननमो कहकर गुह्येन्द्रिय । ॐ मः नमो कहकर दोनों पद संशोधन करे । यह अक्षरन्यास है ॥

यह सब करके पीछे रां बीज को षोडश १६ बार जप कर पूरक, ६४ बार जप कर कुंभक, ३२ बार जप कर रेचक को करे यह प्राणायाम है अब ध्यान कहते हैं।

नीलांभोधरकांतिकायमनिशं वीरासनाध्यासिनम् मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजंजानुनि । सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवम् पश्यन्तं मुकुटांगदादिविविधैः कल्पोज्ज्वलांगं भजे ॥ १ ॥

यह युगल स्वरूप श्रीसीतारामजी का ध्यान करके "रांरामाय नमः" यह अद्वितीय रामतारक मंत्रराज को ६ सहस्र नित्य नियम से जपना चाहिये। शिवसंहिता, अगस्त्यसंहितादि में लिखा है।

षट्सहस्त्रं सहस्त्रं वा त्रिशतं शतमेव वा। जपतव्यो मंत्रिणा मंत्रो नोचेत्प्राप्नोत्यधोगतिम्॥
एवं ज्ञात्वा जपेन्मत्रं षट्सहस्त्रं दिने दिने। अष्टोत्तरसहस्त्रं वा त्रिशतं वाथ शक्तितः॥ २॥

अर्थात् जब से राममंत्र मिले उसी दिन से छे सहस्र अथवा एक सहस्र न हो तो एक ही माला जो जपे उसको अधोगति नहीं होती है भाव जन्म मरण से रहित हो जाते हैं। फिर शिवसंहिता में कहा है कि श्रीरामजी सर्वोपरि हैं ऐसा जानकर श्रीराममंत्र को छे सहस्र नित्य नियम से जपे अथवा एक सहस्र न हो तो तीन ही माला अथवा एकही माला अपनी शक्ति के अनुसार अवश्य जपना चाहिए। श्रीराममंत्र जप करके श्रीरामगायत्री जपना चाहिए। कौन २ मंत्र किस २ आसन पर बैठ कर जपना किस २ की माला से कौन २ अंगुली से मंत्र जपे यह सब विधि विस्तार से "वैष्णवकुलभूषणसारसंग्रह" में लिखी है। चारों सम्प्रदाय के वैष्णवों को रखने और देखने योग्य है। अब आगे भगवत्पूजन विधि लिखते हैं। प्रथम अपना नित्यकर्म तिलक स्वरूप करके भगवत्पूजन करना चाहिए। नहीं तो पूजा पाठ सब निष्फल हो जाते हैं। ऐसा शाण्डिल्यस्मृति में लिखा है यथा।

प्रातःकृत्यमकृत्वा तु यः पूजयति केशवम्। तस्य पूजा निष्फलास्यान्मद्यस्पर्शं पयो यथा॥
तस्मात्पूर्वं प्रयत्नेन नित्याचारं समाचरेत्॥

तस्मात्पूर्वं प्रयत्नेन नित्याचारं समाचरेत् ॥ ५६

अर्थात् प्रातःकाल का कर्म किये बिना जो भगवान् को पूजता है उनकी पूजा निष्फल है जैसे मद्य के स्पर्श से दूध। उससे यत्नपूर्वक प्रथम नित्यकर्म करके पूजन करे। प्रतिमाष्टविधा भागवते।

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥ मणिर्मयी मनोमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥१॥
मृदा च रम्यरत्नेन ताम्रेण रजतेन वा ॥ कृत्वा दारुमयं बिंबमर्चनं कांचनेन वा ॥ २ ॥
पुण्यंशतगुणं दद्यादेतेषामुत्तरोत्तरम् ॥ यस्मिन्सन्निहितोविष्णुः स्वयमेव नृणां भुवि ॥ ३ ॥
जम्बुद्वीपे महापुण्ये वर्षे वै भारते शुभे ॥ अर्चायां सन्निधौ विष्णुर्नेतरेषु कदाचन ॥ ४ ॥

अर्थात् शिलाविग्रह, काष्ठविग्रह, लोहविग्रह, मृत्तिकाविग्रह, चित्रपटविग्रह, बालुकाविग्रह, मणिविग्रह, मानसिक-विग्रह, यह आठ प्रकार की प्रतिमा शास्त्र में कहा है। विष्णुयामल में कहा है कि मृत्तिका की उत्तम रत्न की ताम्र की चांदी की अथवा काष्ठ की प्रतिमा बनाकर किम्वा स्वर्ण की मूर्ति पूजे। इनमें उत्तरोत्तर सैकड़ोंगुना फल देते हैं। क्योंकि प्रतिमा में स्वयं भगवान् रहते हैं। पद्मपुराण में लिखा है कि जंबुद्वीप में महापुण्यरूप भारतवर्ष में भगवान् अर्चाविग्रह में हैं और कहीं में नहीं हैं। इससे मूर्ति की पूजा अवश्य करनी चाहिए। और भी बहुत ही लिखा है शालग्राम की पूजा सब से श्रेष्ठ कहा है। मूर्ति की प्रतिष्ठा वैष्णवों से करानी चाहिए अवैष्णवों से नहीं। इतनी बात अवश्य ध्यान रखनी चाहिए क्योंकि पाराशरस्मृति में लिखा है यथा ॥

देवतांतरभक्तो वा समबुद्धिरथापि वा। नास्तिको वेदहीनो वा न प्रतिष्ठां समाचरेत् ॥

पुनः हारीतस्मृतौ ॥

अवैष्णवेन विप्रेण स्थापिते मधुसूदने । तद्राज्यभूपतिर्वापि विनाशमुपजायते ॥

पुनः वशिष्ठस्मृतौ ॥

अवैष्णवस्थापितानां प्रतिमानां च वन्दनम् । यः करोति समूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

तस्मादवैष्णवान् विप्रान्नकर्मणि नियोजयेत् ॥

अर्थात् अन्य देवता का भक्त हो अथवा और देवता को रामजी के बराबर मानने वाला हो नास्तिक हो वेदविहीन हो उनसे प्रतिष्ठा न करावे । हारीतस्मृति में लिखा है कि अवैष्णव ब्राह्मण की स्थापित की हुई भगवान् की मूर्ति राज को अथवा राजा को नाश करने वाला भय उत्पन्न करती है ॥ वशिष्ठस्मृति में कहा है कि अवैष्णव के स्थापित किये हुये स्वरूपों को जो मूर्ख दण्डवत् करता है वह रौरवनरक को जाता है । इससे अवैष्णव ब्राह्मणों से मूर्ति की प्रतिष्ठा नहीं करानी चाहिए । वैष्णवों से करानी चाहिए । हमारे में बहुत संत लोग अवैष्णव ब्राह्मणों से प्रतिष्ठा कराते हैं सो नहीं करानी चाहिए भारी दोष है । इन बातों पर सब संत महंतों को पूरा ध्यान देना चाहिए । और अपने संप्रदाय के अनुसार अपने गुरु के दिए हुए मंत्र से पूजन करना चाहिए । पूजा षोडश प्रकार की है । आसन १ पाद्य २ अर्घ ३ आचमन ४ स्नान ५ वस्त्र ६ भूषण ७ यज्ञोपवीत ८ धूप ९ दीप १० पुष्प ११ नैवेद्य १२ ताम्बूल १३ आरती १४ गन्ध १५ नमस्कार १६ यह सब कर्म श्रीराममंत्र ही से करे ॥ श्रींसीतायै स्वाहा इससे श्रीसीताजी की । ॐलंलक्ष्मणाय नमः । इससे लक्ष्मणजी की ॐभंभरताय नमः इससे भरतजी की ॐशंशत्रुघ्नाय नमः इससे

शत्रुघ्नजी की ॐहंहनुमते नमः इससे हनुमानजी की पूजा करे। इसी प्रकार से श्रीकृष्णादि की भी पूजा करनी चाहिए। अब आगे जो पूजा की विधि लिखी है सो केवल मूलही हम भी लिखते हैं। क्योंकि पूजा की विधि स्पष्ट है केवल मंत्र कण्ठ कर लेना चाहिए। इसलिए भाषाटीका नहीं किया है। दूसरे भाषाटीका करने से अर्थ बढ़ जायगा लाभ कम होगा। इत्यादि जान करके परिश्रम नहीं किया सो क्षमा करिएगा। पूजाकी विधि नारदपंचरात्रमें विस्तार से लिखी है॥

त्वं पुरासागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे। नमन्ति सर्वदेवास्तु पांचजन्य नमोस्तुते॥ १॥

यह शंखप्रार्थनामंत्र है।

सर्वनादमयीघण्टा देवदेवस्य वल्लभा॥ त्वन्निनादेन सर्वेषां शुभं भवति शोभने॥ २॥

यह घंटा का प्रार्थनामंत्रहै।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते उत्तिष्ठ जगदीश्वर॥ त्वयि उत्थायमानेतु उत्थितं भुवनत्रयम्॥ ३॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ श्रीराम उत्तिष्ठ जानकीपते॥ उत्तिष्ठकमलाकान्त त्रैलोक्ये मंगलं कुरु॥ ४॥

यह उत्थापनमंत्र है।

आगच्छ भगवान्विष्णो स्वस्थानात्परमेश्वर॥ अहं पूजां करिष्यामि सदा त्वं सम्मुखो भव॥५॥

यह आवाहनमंत्र है।

सिंहासने सुवर्णस्य नानारत्नोपशोभिते॥ अनन्तफणपत्रस्य उपविशासने प्रभो॥ ६॥

यह आसन देने का मंत्र है।

स्नानार्थं स्वच्छतोयानि गन्धपुष्पयुतानि च ॥ पाद्यं गृहाण देवेश भक्तानुग्रहकारक ॥ ७ ॥

यह पाद्य देने का मंत्र है ।

शंखतोयं समानीतं गन्धपुष्पादिवासितम् ॥ अर्घ्यं गृहाण देवेश प्रीत्यर्थं मे सदा प्रभो ॥ ८ ॥

यह अर्घ देने का मंत्र है ।

ॐविष्णुः ॐविष्णुः ॐविष्णुः इससे तीन आचमन करावे फिर ।

दधिदुग्धं मधुसर्पिः शर्करां च तथा प्रभो ॥ समर्पयामि देवेश प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ९ ॥

यह मधुपर्कादि स्नान कराने का मंत्र है ।

गंगासरस्वतीतापी पयोष्णीनर्मदार्कजा ॥ तज्जलैः स्नापितो देव तेन शांतिं कुरुष्व मे ॥ १० ॥

यह स्नान कराने का मंत्र है ।

गंगातोयं समानीतं सुवर्ण कलशोद्धृतम् ॥ आचम्यं देवदेवेश प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ११ ॥

यह आचमन कराने का मंत्र है ।

शीतवातोष्णसंत्राणं परलज्जानिवारणम् ॥ सुवेषं धारितं यस्माद्वाससी प्रतिगृह्यताम् ॥ १२ ॥

यह वस्त्र धारण कराने का मंत्र है ।

ब्रह्मणा निर्मितं सत्रं विष्णुग्रंथिसमन्वितम् ॥ इदं यज्ञोपवीतं च गृह्यतां तु जनार्दन॥ १३ ॥

यह यज्ञोपवीत धारण कराने का मंत्र है ।

ॐविष्णुः ॐविष्णुः ॐविष्णुः कह कर आचमन करे ॥

किरीटं कुण्डलं हारं कंकणांगदनूपुरम् । नानारत्नमयं त्वंगे भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥ १४ ॥

यह भूषण धारण कराने का मंत्र है ।

मलयाचलसंभूतं शीतमानन्दवर्द्धनम् । काश्मीरघनसाराढ्यं चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥ १५ ॥

यह चन्दन अर्पण करने का मंत्र है ।

ब्रह्मार्पितंसमज्योतिः शक्राद्याः सर्वदेवताः । वस्त्रं गृहाण देवेश प्रीत्यर्थं मे सदा प्रभो ॥ १६ ॥

यह उत्तरीय वस्त्र धारण कराने का मंत्र है ।

ॐ विष्णुः ॐविष्णुः ॐ विष्णुः तीन आचमन करावे ।

मह्यं प्रसीद जननि सर्वसौभाग्यवर्द्धिनि । आधिव्याधिहरे देवि तुलसि त्वां नमाम्यहम् ॥ १७ ॥

त्वया हीनं महाभागे समस्तं कर्मनिष्फलम् । अतश्चिनोमि त्वां देवि प्रसीद वरदा भव ॥ १८ ॥

अर्थात् हे सर्व सौभाग्य के देनेवाली जननि मेरे पर प्रसन्न हो आप कैसी हैं कि सब आधि व्याधि के हरने वाली इस लिए मैं सब आपको नमस्कार करता हूं । हे महाभागे आपके विना संपूर्ण कर्म निष्फल हैं । इससे हे देवि मैं आपको उतारता हूं आप प्रसन्न होकर वर देने वाली हो । यह तुलसी उतारने का मंत्र है । तुलसी पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी, रविदिन, संक्रांति में, मध्याह्न में, रात्रिमें, दोनों संध्याकाल में तेल लगाकर विना स्नान किए, अशौच में, अशुद्ध शरीर से रात्रि के वस्त्र विना धोवा पहन कर तुलसी नहीं उतारे । भिन्न २ पत्र नहीं उतारे मंजरी सहित

उतारना चाहिए। यदि काम परे तो और दिन उतार भी लेवे। द्वादशी को भूलकर भी न उतारे यदि मूर्खता से उतारे भी तो मानो भगवान् का शिरच्छेदन किया। इससे कभी न उतारे।

तुलसी अर्पण मंत्र।

युग्मपत्राभ्यां संयुक्तां मंजरीमध्यस्थसंस्थिताम्। ददामि रामप्रीत्यर्थं गृहाण जगदीश्वर॥ १६॥

यह तुलसी अर्पण करने का मंत्र है।

नानाविधानि पुष्पाणि ऋतुकालोद्भवानि च। मयार्पितानि सर्वाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम्॥ २०॥

यह पुष्प समर्पण करने का मंत्र है।

वनस्पतिरसोद्भूतः सुगन्धाढ्योमनोहरः। आघ्रेयः सर्व देवानां धूपोयं प्रतिगृह्यताम्॥ २१॥

यह धूप देनेका मंत्र है।

घृतवर्तिसमायुक्तं तथाकर्पूरसंयुतम्। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥ २२॥

यह दीपदान देने का मंत्र है।

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैःषड्भिःसमन्वितम्। भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥ २३॥

यह नैवेद्य अर्पण करने का मंत्र है।

ॐ विष्णुः ३ बार कहकर आचमन करावे। नैवेद्य की विधि सामवेद के आम्नायोपनिषद् में लिखी है। यथा॥

कृताह्निको वेदाध्यापकोद्विजः। पूतेनाचारेण पूतेन मनसाऽभ्यंतरेणाचारेण बाह्याचारेण

धान्यं संस्कृत्य पचित्वा पाकं वाग्जितो नारायणस्य पुरःसरं समर्प्य पार्षदान् सन्नह्य घंटानादं निनदन् दरवरोदकेन तुलसीदलामिश्रितेन पाकान्नं सर्वतो परिवृताकृति संवेष्टयित्वा पोशनंदद्यामृतो परस्तरणमसीत्यमृता विधानसमीति ततोऽन्नंभगवद्रूपाय शालग्राम स्वरूपाय निवेद्यांतःपटं दत्वा बहिरागच्छेत्पुरुषसूक्तं तारकब्रह्मजपं कृत्वा मध्ये जलं निवेद्य दक्षिणतो भूत्वा नैवेद्यं परिसरेत् पुनर्नादं निनदन् आचमनीयं च पेयं पीयूषममृतं फले-क्ष्वादिकं दत्वा शुद्धेन साम्ना मुखशुद्धिं दत्वा तुलस्यांजलिं दद्यात् इति ।

अर्थात् वेद के पढ़ने वाले ब्राह्मण को चाहिए कि नित्यनेम संध्योपासनादि कर्मों को करके मन वचन कर्म से भीतर वाहर के आचरणों से पवित्र होकर अन्न को असनियां करके "मुखमाच्छाद्य वस्त्रेण द्वारमाच्छाद्य यत्नतः" इस शाण्डिल्य ऋषि के वचनानुसार मुख में वस्त्र बांधकर दरवाजा ढांक मौन हो करके रसोई बनाकर भगवान् के सामने थाल धरके पार्षदों को जहां तहां ठीक करके घण्टानाद करते हुए शंख में तुलसीदल मिश्रित शुद्ध जल से सिद्धान्न को चारों ओर से घेर कर भाव थाल के चारों ओर अर्घ देकर मार्जन करे तब आपोशन क्रिया अर्थात् भोग का अन्न जलको "ॐ अमृतोपस्तरण स्वाहा" इस मंत्रसे तीन बार अभिमंत्रित करके तीन भाग देवे "ॐ भूपतये स्वाहा" कहकर प्रथम ग्रास "ॐ भुवनपतये स्वाहा" कहकर द्वितीय ग्रास "ॐ भूतानां पतये स्वाहा" कहकर तृतीय ग्रास देकर फिर पंचकवलि अर्थात् पांच ग्रास देवे इन मंत्रों से । अंगुठा, अनामिका और मध्यमा तीनों अंगुलको मिलाने से प्राण

मुद्रा कही जाती है इससे "ॐ प्राणाय स्वाहा" कहकर प्रथम आहुति देवे। कनिष्ठा, अंगुष्ठा और अनामिका मिलाने से अपानमुद्रा कही जाती है। इस अपानमुद्रा से "ॐ अपानाय स्वाहा" द्वितीय आहुति देवे। तर्जनी अंगुष्ठा और मध्यमा को मिलाने से स्तनमुद्रा कही है इससे "ॐ व्यानाय स्वाहा" कहकर तृतीय आहुति देवे। मध्यमा, अनामिका, अंगुष्ठा और चौथी कनिष्ठिका मिलाने से दक्षिणामुद्रा कही है इससे "ॐ उदानाय स्वाहा" इससे चौथी आहुति देवे। पांचों अंगुल मिलाने से इसको भी स्तनहीमुद्रा कही है इससे "ॐसमानाय स्वाहा" पंचम आहुति देवे। पीछे ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा। इस मंत्र से उच्छिष्ट एक ग्रास पृथ्वी पर छोड़ देवे। इसी को आपोशन क्रिया (पंचकवलि) भी कहते हैं। इस प्रकार से विधानपूर्वक वह अन्न भगवत्स्वरूप शालग्राम के लिए अर्पण करके दरवाजा को बंदकर बाहर आकर पुरुषसूक्त वेदका मंत्र अथवा तारकब्रह्म श्रीराममंत्र को जपकर बीच में दहिनी ओर से मंदिर में जाकर जल देखाकर थाल उसारे फिर घण्टानादपूर्वक तीन आचमन कराके अमृत के समान मीठाफल इक्षु (ऊख) आदि वस्तुओं को देकर मुख शुद्धि के लिए संमुख से तांबूलादि देकर तुलसीदल की अंजलि देनी चाहिए। यह सामवेद में लिखा है।

गंगादितीर्थादीनां तु सुगन्धाढ्यं सुनिर्मलम्। पानार्थमुदकं पुण्यं गृहाण जगदीश्वर ॥ २३ ॥

यह जल अर्पण करने का मंत्र है।

नागवल्लीदलं दिव्यं पूगीखदिरसंयुतम्। वक्त्र सौरभ्यकृत्स्वादु ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ २४ ॥

यह ताम्बूल अर्पण करने का मंत्र है।

सुदीप्तं घृतकर्पूरपूरितं सप्तवर्तिकम्। आर्तिक्यं देव देवेश संगृह्णीष्व मयार्पितम् ॥ २५ ॥

यह आर्ति अर्पण करने का मंत्र है।

चन्द्रसूर्यसमज्योतिराकाशतारासमन्वितम् । शब्दभेर्य्यं त्रिदेवेश प्रगृहाणार्तिकं प्रभो ॥ २६ ॥

यह भी आर्तिका ही मंत्र है । आर्ति कैसे करना चाहिए सो सब कहते हैं । शाण्डिल्य स्मृति के भक्तिखण्ड में कहा है यथा ।

प्रज्वालयेत्तदर्थं च कर्पूरेण घृतेनवा । आर्त्तिक्यं च शुभे पात्रे विषमानेकवर्तिकम् ॥
आदौ चतुष्पादतले च कृत्वा द्विर्नाभिदेशे मुखमण्डलैकम् । सर्वांगदेशेपि च सप्तवारं
तथार्तिकं भक्तजनैस्तु देयम् ॥

अर्थात् भगवत् के लिये शुभपात्र में कपूर से अथवा घृत सहित बत्ति से विषम अर्थात् ७।९।११।१३।१५।१७ इसी प्रकार से अनेक बत्ती की आर्ति बारे । प्रथम भगवान् के पद में चार बार करके दो बार नाभी में एक बार मुखमण्डल में और सातबार सब शरीर में करके भगवत् भक्तों को देवे । आर्ति करती समय में प्रायः सब ही संत महन्त पुजारी हाथ कपाते हैं सो नहीं कपाना चाहिए दोष है । सीधे हाथ से आर्ति करना चाहिए । यह रीति केवल देखा देखी से बिगड़ गई है । सो यह शास्त्रविरुद्ध चाल को अवश्य छोड़ देना चाहिए यह बिनती है । स्कान्द-पुराण में लिखा है यथा ॥

ततश्च सजलं शंखं भगवन्मस्तकोपरि । त्रिर्भ्रामयित्वा कुर्वीत पुनर्नीराजनं प्रभो ॥
शंखोदकं हरेर्भुक्तं निर्माल्यं पादयोर्जलम् । चन्दनं धूपशेषं च ब्रह्महत्यापहारकम् ॥

अर्थात् आर्ति करके जलके सहित शंखको तीन बार भगवान् के शिरपर घुमाकर वैष्णवों पर फेंक देवे पंचनीराजन में एक यह भी नीराजन है शंख का जल पद में न परे बड़ा दोष है। नारदजी ब्रह्माजी से कहते हैं कि शंख का जल, भगवत्प्रसाद चरणोदक, प्रसाद चन्दन और धूप यह सब ब्रह्महत्या को हरनेवाले हैं। पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में लिखा है। यथा॥

यो श्नाति तुलसीपत्रं सर्वं पापहरं शुभम्। तच्छरीरांतरस्थापि पापा नश्यन्ति तत्क्षणात्॥

अर्थात् भगवत्प्रसाद तुलसीदलको जो खाता है उसके अंतःकरण के सब पाप नाश होते हैं। बासी तुलसीदल और गंगाजल से भी भगवत्पूजन करना चाहिए। बासी पुष्प जल वर्जित है॥

यन्मया भक्तियोगेन पत्रं पुष्पं फलं जलम्। निवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकंपया॥ २७॥

आवृतां मृदु पुष्पाणां वनस्पातिरसायुताम्। पुष्पांजलिमहं दद्मि संगृहाण कृपानिधे॥ २८॥

इस मंत्र से प्रार्थनापूर्वक पुष्पांजलि देवे।

उपचारैः समस्तैस्तु यत्पूजा च मया कृता। तत्सर्वं पूर्णतां यातु ह्यपराधं क्षमस्व मे॥ २९॥

यह अपराध क्षमा करानेका मंत्र है।

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्या शतानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे॥३०॥

यह प्रदक्षिण करने का मंत्र है। यह मंत्र पढ़कर चार प्रदक्षिण करे कम न करे चार से ७। २१। १०८ तक

प्रदक्षिण करना चाहिए। प्रदक्षिण करके दहिनी ओर से एक साष्टांग अथवा दो तीन करे साष्टांग करने की भी रीति हमारे में बिगड़ गई है। दण्डवत् करती समय कोई २ संत पृथ्वी में शरीर लगाते हैं। नहीं तो सब ऐसे ही निर्वाह करने के लिए ऊपर ही से हाथ के बल से साष्टांग कर लेते हैं। पृथ्वी में शरीर कोई भी नहीं लगाते हैं और जबतक पृथ्वी में शरीर न लगेगा तबतक साष्टांग का अर्थ ही नहिं लगेगा। कोई २ साष्टांग करती समय पैरपर पैर चढ़ालेते हैं। कोई २ संत पैर टेढ़ा कर लेते हैं। कोई २ आलस के मारे ऊंचा मंदिर देखके नीचहीं से देहली में छाती हाथ दोनों लगाकर साष्टांग कर लेते हैं। इसी प्रकार के अनेकन दोष पड़गए हैं। जिससे कि साष्टांग करने का फल नहीं प्राप्त होता है। इसलिए ठीक २ साष्टांग करना चाहिए जैसा कि शास्त्र में लिखा है। साष्टांग का अर्थ यही है कि आठो अंग एक होजावें जैसा कि हारीतस्मृति में लिखा है। यथा ॥

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा। पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग उच्यते ॥

अग्रे पृष्ठे वामभागे संमुखे गर्भमंदिरे। जपहोमनमस्कारान्न कुर्य्यात्केशवालये ॥

अर्थात् उर (छाती) १ शिर २ दृष्टि ३ मन ४ वचन ५ दोनों पैर ६ दोनों हाथ ७ दोनों जानु (जंघा ठेहुना मिलाकर) ८ यह सब एक करके जो प्रणाम करे उसको साष्टांग कहते हैं। भगवान् के आगे अथवा पीछे बायें ओर सन्मुख बीच मंदिर में तथा जप होम नमस्कार भगवत् मंदिर में नहीं करना।

वाराहपुराणे ॥

वस्त्रप्रावृतदेहस्तु यो नरः प्रणमेत्तु माम्। सस्त्रीत्वं जायते मूर्खः सप्त जन्मनि भामिनि ॥

श्रीभगवान् बोले लक्ष्मी से कि हे भामिनि जो मूर्ख अंगा कुर्ता अँचला आदि वस्त्रों को शरीर में धारण करके मेरे को दंडवत करते हैं वह ७ जन्मतक स्त्री होते हैं। इससे प्रार्थना है कि विधिपूर्वक दंडवत् किया करें हमारे में देखा देखी से सब रीति बिगड़ गई है।

श्रीरामोपासक को दो दण्डवत् करना महाशंभुसंहिता में लिखा है।

यज्ञोपवीतं धौतं च कौपिनाच्छादनं परम्। गृह्णंति धातुपात्रं वा तुम्बिकां रामसेवकाः॥
भक्षंमहाप्रसादस्य पानं पादोदकं सदा। दंडवत्प्रोक्तमुभयं वंदनं स्वामि दक्षिणे॥
गुरुं हरिं समं मन्येत्सेव्यं चैव परिक्रमम्। तुलस्यामालातिलकं धनुर्बाणांकितौ भुजौ॥
रामसंत्राभिनामाद्यः संस्कारो रामसेवके।

अर्थात् यज्ञोपवीत शुक्लवस्त्र कौपिन ढांकने के लिए अंचला धातुपात्र (लोटा) और तुम्बिका यह सब रामभक्त धारण करते हैं। महाप्रसाद का पाना सदा चरणोदक पीना स्वामि के दहिनी ओर से दो दण्डवत् कहा है। श्रीगुरु हरिको एक मानकर सेवा पूजा परिक्रमा समान करे। तुलसी की माला १ तिलक २ धनुषबाण दोनों भुजा में धारण करना ३ राममंत्र ४ रामदास आदि नाम ५ यह रामभक्त का पंच संस्कार है। विस्तार से राममंत्र परम वैदिक और वैष्णवकुलभूषणसारसंग्रह में देखो।

अब साष्टांग करने का मंत्र लिखते हैं॥

त्राहि मां पापिनं घोरं धर्माचारविवर्जितम्। नमस्कारेण देवेश संसारार्णव पातिनम्॥३१॥

ध्यानम् । नीलाम्बोधरकान्तिकायमनिशं वीरासनाध्यासिनम् मुद्राज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि ॥ सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं पश्यन्तं मुकुटांगदादि-विविधा कल्पोज्ज्वलांगं भजे ॥ ३२ ॥

क्षीरसागरसमुद्रे शेषशय्या महाशुभा । तस्यां स्वपिहि देवेश कुरु निद्रां जगत्पते ॥ ३३ ॥

यह शयन कराने का मंत्र है।

तच्छाया सुप्तो विष्णुर्लक्ष्मीश्चरणसेविनी । प्रणमन्ति सुराः सर्वे ब्रह्मा भृगुश्च नारदः ॥ ३४ ॥

यह चरणसेवन का मंत्र है।

मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं परात्पर । पूजितोसि मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ ३५ ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् । पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर ॥ ३६ ॥

यह पूजा विसर्जन कराने का मंत्र है॥

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् । मधुपर्काचमनस्नान वसना भरणानि च ॥ ३७ ॥
सुगन्धसुमनो धूपं दीपं नैवेद्यमेव च । प्रार्थना चरणार्चा च अर्पणानि च षोडश ॥ ३८ ॥

अर्थात् आसन १ स्वागत २ पाद्य ३ अर्घ ४ आचमन ५ मधुपर्क ६ आचमन ७ स्नान ८ वस्त्र ९ भूषण १०

सुगंध ११ धूप १२ दीप १३ नैवेद्य १४ प्रार्थना १५ चरणसेवा अर्पण करना यही षोडश प्रकार की पूजा है। भगवत्सेवा करना यही भजन है। क्योंकि भज धातु से भजन शब्द सिद्ध हुआ है। वह सेवा का स्वरूप आदिपुराण में ऐसा लिखा है।

अवताराह्य संख्येया हरेर्विश्वपतेर्भुवि। चतुर्युगावताराश्च प्रधानाः कथिता बुधैः ॥ १ ॥
वाचा गायंति तल्लीलां कर्णौ शृण्वंतितद्यशाः। पद्भिर्गच्छान्ति क्षेत्राणि करैर्मंदिरमार्जनम्॥ २॥
पश्यन्ति रूपं चक्षुर्भ्यां गन्धं जिघ्रन्ति नासया। हरेर्निर्माल्य पुष्पस्यालिंगनं ये च कुर्वते ॥३॥
भक्त्या पादोदकं पीत्वा यान्ति संतृपणं हृदि। मानसे चरणं विष्णोर्नैवेद्यमुदरे तथा ॥ ४ ॥
निर्म्माल्य चन्दनं भाले मस्तके तुलसीदलम्। धारयन्ति प्रतिदिनं श्रीकृष्णैकाग्रचेतसः ॥५॥
एवं क्रिया हि भक्तानां लक्षणानि वदाम्यहम्।

अर्थात् विश्वपति भगवान् के अवतार पृथ्वी में बहुत हैं उनमें २४ अवतार मुख्य हैं उनमें भी दश अवतार दशमें भी राम, कृष्ण, नरसिंह और वामन यह चार अवतार मुख्य हैं उनमें भी श्रीराम कृष्ण दो अवतार प्रधान हैं इन्हीं के भजन स्मरण सब ऋषि मुनि महात्मालोग करते हैं। कैसे भजन करते हैं सो देखाते हैं। वचन से उनकी लीला गाते हैं। कानों से उनके यश सुनते हैं। पदों से अयोध्या, वृन्दावनादि दिव्य क्षेत्रों में भ्रमण करते हैं। हाथों से पूजन तथा मंदिर में झाड़ू चौका बर्तन आदि सेवा करते हैं। नेत्रों से स्वरूप को देखते हैं। नासिका से इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों को सूंघते हैं। भगवत्प्रसाद पुष्प को जो छाती से लगाते हैं। चरणोदक को भक्तिपूर्वक पीकर हृदय

रा० प० में तृप्त होजाते हैं। मनमें भगवच्चरण को तथा उदर में भगवत्प्रसाद को और प्रसादी चन्दन ललाट में तुलसीदल को

में तृप्त होजाते हैं। मनमें भगवच्चरण को तथा उदर में भगवत्प्रसाद को और प्रसादी चन्दन ललाट में तुलसीदल को शिरमें नित्य नियम से धारण करते हैं। ऐसी क्रिया (आचरण) और लक्षण भक्तों के कहे हैं।

अब ३२ अपराध कहते हैं भगवद्भक्तों को इनसे अवश्य ही बचना चाहिए। श्रीनारदपंचरात्रमें लिखा है यथा ॥

यानैर्वा पादुकैर्वापि गमनं भगवद्गृहे । देवोत्सवाद्य सेवाह्य प्रणामस्तदग्रतः ॥ १ ॥
उच्छिष्टेवाऽथवाऽशौचे भगवद्दर्शनादिकम् । एकहस्तप्रणामं च यत्सुतेऽस्मिन्प्रदक्षिणम् ॥२॥
यत्पुरो दण्डपातश्च यश्च ताम्बूलमग्रतः । पादप्रसारणं चाग्रे तथा पर्य्यंकबन्धनम् ॥ ३ ॥
शयनं भक्षणं वापि मिथ्याभाषणमेव च । उच्चैर्भाषा मिथो जल्पो रोदनानि च विग्रहः ॥ ४ ॥
निग्रहानुग्रहौ चैव मृष्टश्च क्रूरभाषणम् । पृष्ठीकृत्वासनं चैव परेषामभिवादनम् ॥ ५ ॥
गुरोर्मौनं निजस्तोत्रं देवब्राह्मणनिन्दनम् । कंबलावरणं चैव परनिंदा परस्तुतिः ॥ ६ ॥
अश्लीलभाषणं चैव अधोवायुविमोचनम् । तत्तत्कालोद्भवानां च फलादीनामनर्पणम् ॥ ७ ॥
अशक्तौ गौणोपचारश्च निवेदितभक्षणम् । अपराधस्तथा विष्णोर्द्वात्रिंशत्प्रकीर्त्तिताः
यत्नतोवर्जनीयास्ते विष्णुपूजनतत्परैः ॥ ८ ॥

अर्थात् असवारी पर सवार होकर मंदिर में नहीं जाना १ चरणपादुका पहिन कर भी नहीं जाना २ समय २ में उत्सवादि नहीं करना ३ भगवान् के सामने जाकर प्रणाम नहीं करना ४ अशौच में अथवा जूठे मुखसे दर्शन दण्डवत्

नहीं करना ५ एक हाथ से प्रणाम नहीं करना ६ शयन करने पर दंडवत् और प्रदक्षिण नहीं करना ७ "संमुखे दण्डपातश्च नैवकुर्यात्कदाचन" अर्थात् संमुख दण्डवत् नहीं करना ८ भगवान् के सामने अथवा मंदिर में तांबूल नहीं खाना ९ भगवत् के सामने पांव पसार कर नहीं बैठना १० सामने पांव पर पांव धर अथवा कपड़ा से जानु बांधकर नहीं बैठना ११ सामने शयन नहीं करना १२ भोजन भी नहीं करना १३ झूठ नहीं बोलना १४ सामने जोर से चिल्लाना नहीं चाहिए १५ सामने परस्पर बकवाद नहीं करना १६ सामने रोदन नहीं करना १७ सामने झगड़ा नहीं करना १८ सामने किसी को निरादर नहीं करना १९ आदर भी नहीं करना २० सामने मीठी बात नहीं करनी २१ क्रूरभाषण भी नहीं करना २२ सामने पीठ करके खड़ा होना अथवा बैठना नहीं चाहिए २३ पूज्य पुरुष को छोड़कर किसी को दंडवत् नहीं करना २४ गुरु मौन हों अपनी बड़ाई नहीं करनी २५ सामने देवता ब्राह्मण की निन्दा नहीं करना २६ भगवत्सेवा में कंबल की परदा नहीं करनी क्योंकि बाल उड़कर भोजनादि में पड़ने से दोष होगा इसलिए कंबल की परदा मना है २७ सामने दूसरे की निन्दा स्तुति नहीं करनी २८ सामने खराब बोली नहीं बोलना २९ सामने हवा नहीं छोड़ना ३० समय २ के फलों को अर्पण नहीं करना ३१ शक्ति होते भोग राग नहीं लगाना समैया नहीं करना बटोर २ धरना बिना भोग लगाए पा लेना ३२ यह सब भगवदपराध को बड़े जतन से त्याग देना चाहिए। और भी लिखा है कि भगवत् के सामने में पीछे में तथा बामा ओर में और बीच मंदिर में जप होम नमस्कार कदापि नहीं करना। एक प्रदक्षिणा भी न करे यह सब बात संत महन्त महानुभावों को स्मरण रखना चाहिए। अब चरणोदक माहात्म्य कहते हैं।

पादोदकस्य माहात्म्यं जानात्येव हि शंकरः। विष्णुपादोदकं पीत्वा शुद्धिमाप्नोति तत्क्षणात् ॥ १ ॥

विष्णुपादोदकं देवि पीत्वा शिरसि धारयेत् ॥ पुण्यपापविनिर्मुक्तो वैष्णवीं गतिमाप्नुयात् ॥ २ ॥
तीर्थप्रसादस्वीकारानन्तरं वैष्णवो द्विजः ॥ न हस्तक्षालनं कुर्य्यान्न तत्राचमनं क्रिया ॥ ३ ॥

अर्थात् चरणोदक का माहात्म्य शिवजी ही जानते हैं विष्णुपादोदक पीकर उसी ही क्षण पवित्र हो जाता है। शिवजी बोले हे देवि विष्णुपादोदक को पीकर शिर पर धारण करे वह पुण्य पाप से रहित हो करके वैष्णवी गति को प्राप्त होता है। वैष्णव ब्राह्मण को चाहिये कि चरणोदक प्रसाद लेने के बाद न हाथ ही धोवे न आचमन ही करे यदि भगवत्सेवा में जाना हो तो हाथ मुख धोकर जावे। सब सज्जनों से प्रार्थना है। हमारे साधुओं में चाल है कि सब लोग हाथ में चरणोदक लेते हैं। सो लेना दोष है यदि हाथ से लेना हो तो वामा हाथ पर कपड़ा धरके लेवें ऐसा शास्त्र में लिखा है। यथा शाण्डिल्यसंहितायां भक्तिखण्डे।

उदकं चन्दनं चक्रं शंखं च तुलसीदलम् ॥ घंटाचारुशिलाताम्रनवभिश्चरणामृतम् ॥ १ ॥
तीर्थपानाच्छतगुणं दोषस्तीर्थच्युतो भवेत् ॥ तस्मात्पात्रेण तत्पेयं किम्वाऽधः कर वाससा ॥ २ ॥

अर्थात् जल १ चन्दन २ गोमतीचक्र ३ शंख ४ तुलसीदल ५ घंटानाद ६ पुरुषसूक्त मंत्र ७ शालग्राम ८ तामा का पात्र अर्थात् संपट यह नौ वस्तु होने से चरणामृत कहे जाते हैं। यत्न से पीना चाहिए। पीने से सौगुण पाप है गिरने में। इसलिए वह चरणोदक पात्र से पीना चाहिए अथवा वामा हाथ पर वस्त्र धरके पिए जिससे गिरे नहीं। इसीलिए केवल हाथ से पीना दोष है यथा।

शालग्रामशिलातोयसोमपानदिने दिने ॥ पात्रान्तरेण तद्ग्राह्यं करेण सुरया समम् ॥ १ ॥

अर्थात् शालग्राम का चरणोदक सोमपान के समान दिन २ फलप्रद है उस चरणोदक को दूसरे पात्र से लेकर पिए हाथ में लेकर नहीं यदि हाथ से पिए तो मद्य के समान है। इत्यादि बहुत लिखा है। इससे दोषनिवृत्ति के लिए हाथ के नीचे वस्त्र अवश्य लगा लेना चाहिए। और चरणोदक इस मंत्र से लेवे।

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ विष्णोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम् ॥

यह मंत्र पढ़ कर चरणोदक पीकर हाथ शिर में लगाना चाहिए। न लगाने से दोष है। शास्त्र में लिखा है कि संत गुरु का भी चरणोदक प्रसाद लेना चाहिए सो भी भगवत्के चरणोदक प्रसाद से प्रथम ही लेना चाहिए यथा भुशुण्डिरामायणे ५३ सर्गे।

विना गुरुं नमस्कृत्य हरिं नमस्करोति यः ॥ न पश्यति हरिस्तस्य मुखं चापि कदाचन ॥ १ ॥
श्रीगुरोर्भुक्तशेषं तु प्रथमं यो भुनक्ति वै ॥ पश्चाद्धरिप्रसादं च महापुण्यं प्रजायते ॥ २ ॥
गुरुप्रसादमाहात्म्यं न वक्तुं कोपि शक्नुयात् ॥ व्यतिक्रमेण पापस्य न संख्या विद्यते नराः॥ ३॥
श्रुतिमूलं गुरोर्वाक्यं पूजामूलं गुरोः पदम् ॥ धर्ममूलं गुरोः सेवा शुभमूलं गुरोः कृपा ॥ ४ ॥

अर्थात् विना गुरु को नमस्कार किए जो भगवान् को दंडवत् करते हैं उनके मुख को भगवान् कभी भी नहीं देखते हैं। जो प्रथम गुरुप्रसाद को पाकर पीछे भगवानप्रसाद को पाते हैं उनको महापुण्य होता है। श्रीगुरुप्रसाद का

है। जो प्रथम गुरुप्रसाद को पाकर पीछे भगवान्प्रसाद को पाते हैं उनको महापुण्य होता है। श्रीगुरुप्रसाद को ७४

माहात्म्य कोई भी नहीं कह सकते हैं उलटा करने से अर्थात् भगवान्प्रसाद चरणोदक को जो लेकर श्रीगुरुप्रसाद चरणोदक को लेते हैं उनके पाप की संख्या कोई नहीं कर सकते हैं। गुरु का वचन वेद का मूल है पूजा का मूल गुरु का चरण है। गुरु की सेवा धर्म का मूल है। शुभ का मूल गुरुकृपा है। इससे श्रीगुरुसेवा सर्वदा करना चाहिए। शास्त्र में लिखा है कि श्रीगुरु की चरणपादुका अथवा चरणचिह्न वस्त्र को नित्यनेम से पूजन करे। और चरणोदक की गोली बनाकर पास में रख लेवे उसीसे चरणोदक लिया करे। यह सब रीति हमारे में छूट गई है। अब जो कहो तो नई बात समझ कर हँसते हैं और कहते हैं कि तुम तो नई बात चलाते हो हम नहीं मानेंगे। जो बात बड़े बूढ़े से चली आती है हम उसीको मानेंगे। इसी प्रकार से बेप्रमाण दलील करने लग जाते हैं। सो नहीं करना चाहिए यह विचार अवश्य करना चाहिए। देखिए हमारी गुरुपरंपरा श्रीजानकीजी से है जोकि श्रीअग्रस्वामीजी ने लिखी है। जिसको कि उज्जैन के चढ़ाउ पर सब पंचों ने स्वीकार की है। इसीके आधार पर सब पटलपद्धतियों में श्रीराममंत्र के ऋषि श्रीजानकीजी को लिखा है और भी पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों में बहुत ही लिखा है। विशेष निर्णय देखना हो तो "श्रीराममंत्रपरमवैदिकसिद्धान्त" को देखिए। लिखा तो ऐसा है और कोई २ कहते हैं कि हमारे बड़े बूढ़े श्रीरामानुज स्वामी को मानते आए हैं हम भी मानेंगे। दूसरी बात कुशावर्त पंचवटी में लगभग ३५० वर्ष की चरणपादुका में श्रीरामानन्द स्वामी का नाम ताम्रपत्र में लिखा है। और बर्तन भांड़ा राउटी कानात में सर्वत्र श्रीरामानन्द स्वामी का नाम लिखा है। और भूल से कहते हैं कि हम तो श्रीरामानुज स्वामी की चरणपादुका पूजते हैं। कहिए बड़े बूढ़ों की बात कुशावर्त पंचवटी की मानी जायगी कि आपकी। अब विशेष क्या कहें ऐसे ही सर्वत्र जानना चाहिए। हमारे बड़े बूढ़े भजन करते रहे इसलिए शास्त्र पर विशेष ध्यान नहीं देते रहे। इसलिए समय की कठिनता

से कोई बात छूट गई कोई बात बढ़ गई। जैसे कि हमारे घर में तीन मंत्रों का बराबर उपदेश होता आया है। बीच में आकर न जाने कब से दो मंत्र ही छूट गये केवल एक श्रीराममंत्र ही रह गया है। कहिए अब जो दो मंत्र आपको बतावें तो क्या आप उसको नवीन कह सकते हैं। कदापि नहीं कह सकते हैं। इसी प्रकार से श्रीगुरुपरंपरा को भी जानना चाहिए। सन्त चरणोदकप्रसाद का माहात्म्य "वैष्णवकुलभूषणसारसंग्रह" में देख लीजिएगा। ग्रन्थ विस्तार होने के भय से नहीं लिखा है। महोपनिषद् में लिखा है।

विष्णुनाऽश्नीतमश्नन्ति विष्णुना घ्रातं जिघ्रन्ति ॥ विष्णुना पीतं पिबन्ति विष्णुना रसितं रसयन्ति ॥ तस्माद्विद्वांसो विष्णूपहृतं भक्षयेयुरिति ॥ १ ॥ विष्णोर्निवेदितं चान्नं योऽश्नाति भुवि मानवः ॥ स याति परमं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ २ ॥ ममान्नं निंदयेद्यस्तु मम निंदां करोति सः ॥ मद्दर्शनेन यत्पुण्यं तत्सर्वं तस्य नश्यति ॥ ३ ॥

अर्थात् वेद में लिखा है कि भगवान् के पाए हुए को पाते हैं भगवान् के सूंघे को सूंघते हैं भगवान् के पिए को पीते हैं। भगवान् के रसलिए को रस लेते हैं। उससे विद्वान् भगवान् के प्रसाद को पावे। भगवत्प्रसाद को जो मनुष्य संसार में पाते हैं वह जन्म मरण से रहित होकर परमपद को जाते हैं। पद्मपुराण में भगवान् कहते हैं कि जो हमारे भोग लगाए हुए अन्न की निन्दा करते हैं अर्थात् प्रसाद ठीक नहीं है दाल सिद्ध न हुई शाक में रामरस विशेष है रोटी लग गई है इत्यादि अनेकन दोष लगाते हैं सो भगवत् निन्दा करना है। उसका भगवद्दर्शन का सब पुण्य नाश

हो जाता है। इसीलिए महात्मा लोग प्रथम मौन होकर प्रसाद पाते रहे अब यह टकसार उठ गया सो नहीं करना चाहिए भारी अपराध है। अब ५२ द्वारा लिखते हैं।

रामानन्दो निम्बादित्यो विष्णुस्वामिः श्रीमाधवः॥ चत्वारो धर्मशीलाश्च जगति धर्मस्थापकाः॥ १॥ एतेषामनुयायीनो द्विपंचाशद्विजज्ञिरे॥ अनन्तानन्दालखरामो सुखानन्दो नरहरिः॥ २॥ भावानन्दकीलाग्रौ च सुरसुरानन्दस्तथा॥ पीपाखोजिजंगमाश्च त्यागीविरमथंभणाः॥ ३॥ देवाकरानभानन्द गोकुलो विट्ठलस्तथा॥ नाभाटीलाशोसुरामो राघवचेतनस्तथा॥ ४॥ ज्ञानिनाभा परशुरामो नामदेवकबीरकौ॥ कुबाख्यो देवमुरारिर्दुन्दुरामभडंगिनौ॥ ५॥ चेतनस्वामीनागाख्य आत्मारामस्तथैव च॥ नित्यानन्दो योगानन्दो घमण्डी मलुकस्तथा॥ ६॥ भगवान्नारायणश्चैव रामरंगी तथैव च॥ पूर्णवैरागी गोविन्दो रामरावल एव च॥ ७॥ राधावल्लभीहनुमाँल्लालतुरंगी एव च॥ चतुर्भुजीकर्मचन्दः कालुनयनाख्यस्तथा॥ ८॥ श्रीमद्वनखण्डी चैव रामरमाणी एव च॥ श्रीगुतमाधवश्चैव श्रीतनतुलसी तथा॥ ६॥

अर्थात् रामानन्द, निंबार्क, विष्णुस्वामी और माधवाचार्य यही चारो धर्मशील संसार में वैष्णव धर्म के स्थापक हैं।

इन्हीं के अनुयायियों ने ५२ द्वारा स्थापित की है। सब का नाम कहते हैं। श्रीअनन्तानन्दजी १ श्रीअलखरामजी २ श्रीसुखानन्दजी ३ श्रीनरहरिजी ४ श्रीभावानन्दजी ५ श्रीकीलजी ६ श्रीअग्रस्वामीजी ७ श्रीसुरसुरानन्दजी ८ श्रीपीपाजी ९ श्रीखोजीजी १० श्रीजंगमजी ११ श्रीत्यागीजी १२ श्रीविरमजी १३ श्रीथंभनजी १४ श्रीदेवाकरजी १५ श्रीअनुभानन्दजी १६ श्रीगोकुलजी १७ श्रीविट्ठलजी १८ श्रीनाभाजी १९ श्रीटीलाजी २० श्रीशोभुरामजी २१ श्रीराघवचेतनजी २२ श्रीज्ञानीनाभाजी २३ श्रीपरशुरामजी २४ श्रीनामदेवजी २५ श्रीरामकबीरजी २६ श्रीकुवाजी २७ श्रीदेवमुरारिजी २८ श्रीदुन्दुरामजी २९ श्रीभड़ंगीजी ३० श्रीचेतनस्वामी ३१ श्रीनागाजी ३२ श्रीआत्मारामजी ३३ श्रीनित्यानन्दजी ३४ श्रीयोगानन्दजी ३५ श्रीघमण्डीजी ३६ श्रीमलुकजी ३७ श्रीभगवान्नारायणजी ३८ श्रीरामरंगीजी ३९ श्रीपूर्णवैराठी (पूर्णवैरागी) जी ४० श्रीगोविन्दजी ४१ श्रीरामरावलजी ४२ श्रीराधावल्लभीजी ४३ श्रीहनुमानजी ४४ श्रीलालतुरंगीजी ४५ श्रीचतुर्भुजजी ४६ श्रीकर्मचन्दजी ४७ श्रीकालुनयनजी ४८ श्रीवनखण्डीजी ४९ श्रीरामरमाणीजी ५० श्रीमाधवजी ५१ श्रीतनतुलसीजी ५२ यही ५२ द्वारे हैं उनमें ९ द्वारा श्रीनिंबार्क सम्प्रदाय में हैं ३ द्वारा श्रीविष्णुस्वामीजी में ३ द्वारा श्रीगौड़संप्रदाय में हैं और ३७ द्वारे हमारे श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवों में हैं। इन सबको अच्छी तरह से जानना चाहिए।

यहां तक श्रीरामपटल है। इसकी भाषाटीका समाप्त करके अब इसके आगे कुछ शास्त्रोक्त विषय जोकि अपने वैष्णवों के लिए परमोपयोगी है सो निवेदनरूप से सेवा में उपस्थित करता हूं। इसे प्रेमपूर्वक स्वीकार करें। यह हमारी बिनती है॥ हारीतस्मृति में लिखा है।

न कुर्यात्संधितं वस्त्रं देवकर्मणि भूमिप ॥ न दग्धं न च वै छिन्नं परकीयं न धारयेत् ॥ १ ॥

काकविष्ठासमायुक्तं नाविधूतं शुचिर्भवेत् ॥ रजकादाहृतं वस्त्रं तद्वस्त्रं न भवेच्छुचिः ॥ २ ॥
कटिस्पृष्टं तु यद्वस्त्रं पुरीषं येन कारितम् ॥

अर्थात् सिया हुआ वस्त्र से देवकर्म पूजादि नहीं करे और जला वस्त्र न कटा और न दूसरे का पहिना हुआ भी धारण करे। काकविष्ठावाला वस्त्र विना धोये शुद्ध नहीं होता है धोबी का धोया हुआ भी वस्त्र पवित्र नहीं होता है। जिस वस्त्र से डोलडाल गए हो लघुशंका किए हो कटि में धारण किए हो स्त्रीप्रसंग किए हो यह सब वस्त्र विना धोए पवित्र नहीं होते हैं और भी आगे लिखा है कि ऊर्ण वस्त्र सदा पवित्र है चाहे श्वेत हो चाहे लाल हो सिया हो अथवा जला हो सब पवित्र है। अग्नि, ब्राह्मण, ऊर्ण वस्त्र और कुश चारो पवित्र हैं।

चन्द्र सूर्य ग्रहण में स्नान पूजनादि करने की विधि।

चन्द्र सूर्य ग्रहण एक महापर्व है। इस महापर्व में भगवत्पूजन, भोग, राग और स्वयं स्नानादि कर्म्म कैसे करना चाहिये। इस पर सब सज्जनों को पूरा ध्यान देना चाहिये। शास्त्र में लिखा है कि सूर्यग्रहण में चार पहर और चन्द्र-ग्रहण में तीन पहर प्रथम ही सूतक लग जाता है। उसी समय से भोजनादि कर्म त्याग देना चाहिये। यथा—माध-वीये वृद्धगौतमः।

सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वंयामचतुष्टयम्। चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना ॥

अर्थात् सूर्यग्रहण में चार पहर और चन्द्रग्रहण में तीन पहर प्रथम ही भोजन न करै बालक, वृद्ध और आतुर (रोगी) को छोड़ कर। और भी लिखा है कि यदि दिन के पहले पहर में सूर्य्यग्रहण हो तो पूर्व ही रात्रि के पहले

पहर में भोजन कर लेना चाहिये। यदि रात्रि के पहले पहर में चन्द्रग्रहण हो तो दिन के सवेरे ही ६ बजे तक पूजन करके भोग लगा कर मन्दिर बन्द कर देना चाहिये इसी के अन्दर भोजन भी कर लेना चाहिये। यदि चन्द्र सूर्य ग्रस्त ही अस्त हो जावें तो फिर चन्द्र सूर्य्य का दर्शन करके भोजन करना चाहिये नहीं तो पातकी होना पड़ता है। और जब मन्दिर बन्द करने लगे तब सब वस्तुओं में कुश रख देना चाहिये। क्योंकि कुश से सब वस्तु पवित्र रहती हैं। और ग्रहण लगे तब स्नान करे बीच में मौन होकर हवन, पूजन, भजन, स्मरण करै, स्नान करके मंदिर सब धोकर बर्तन भाँड़ा साफ करके फिर श्रीठाकुरजी को मज्जन कराके स्नान पूजन करे। उग्रहकाल में दान करके फिर स्नान करना चाहिये। यथा हेमाद्रिः।

ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते। मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते॥

अर्थात् ग्रहण लगे तब स्नान करे लग जाने पर होम करे छूटते समय में दान करै और बिल्कुल छूट जाने पर मुक्तस्नान अवश्य करे। न करने से दोष होता है। ग्रहणकाल का सूतक चारो वर्णों को लगता है। इसलिए सचैल स्नान करना चाहिये। यथा मदनरत्ने।

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत्॥
मुक्तो यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके। स सूतकी भवेत्तावद्यावत्स्यादपरोग्रहः॥

अर्थात् सब जातियों को ग्रहण का सूतक लगता हैं इससे वस्त्र समेत स्नान करै। और ग्रहणकाल का अन्न न पावै। भार्गवार्चनदीपक में लिखा है कि जो कोई चन्द्र, सूर्य्यग्रहण का मुक्तस्नान अर्थात् मोक्षस्नान नहीं करता है

वह जब तक दूसरा चन्द्र सूर्य्यग्रहण नहीं लगता है तब तक सूतकी रहता है। इसलिये मोक्षस्नान अवश्य करना चाहिये। शास्त्र में लिखा है कि चन्द्र सूर्य्यग्रहण का स्नान गंगाजी में अवश्य करना चाहिये। यदि गंगाजी न मिलें तो और ही नदी, तड़ागादिक में कर लेना चाहिये। यथा महाभारते—

गंगास्नानं तु कुर्वीत ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः। महानदीषु चान्यासु स्नानं कुर्य्याद्यथाविधि ॥

अर्थात् चन्द्र सूर्य्य दोनों ग्रहण में गंगास्नान करैं नहीं तो महानदी में अथवा अन्य नदी तड़ागादि में विधिपूर्वक स्नान करैं। शास्त्र में यह भी लिखा है कि ग्रहण में सब जल गंगाजल के समान हो जाता है और सब ब्राह्मण व्यास के तुल्य हो जाते हैं। ग्रहणकाल में जो कुछ कर्म्म किया जाता है सो सब सहस्रों गुना हो जाता है। चन्द्रग्रहण का विशेष फल काशीजी में है। और सूर्य्यग्रहण का फल कुरुक्षेत्र में है। यहाँ पर सब सज्जनों से विनती किये देता हूँ, इस बात को सर्व्वदा स्मरण रखियेगा। और विचारपूर्वक आप करैं तथा अपने सेवक सतियों को भी उपदेश किया करैं।

बात यह है कि वर्तमान समय में जो कुरुक्षेत्र का मेला होता है सो यथार्थ नहीं है। कुरुक्षेत्र में सूर्य्यग्रहण स्यमंत पंचक क्षेत्र में होना शास्त्र प्रमाण है। थानेश्वर का प्रमाण कहीं नहीं है। यहाँ पर मेला होने का मुख्य कारण यह है सो भी सुनिये। जीन रियासत में एक बड़े प्रतिष्ठित शैव पण्डित वनमालीजी हुए हैं वह ग्रहणस्नान करने के लिये स्यमंतक पंचक क्षेत्र जो कि जीन स्टेशन से तीन चार कोस दक्षिण कुछ पश्चिम की ओर है। वहाँ पर गये वहाँ के पंडों को वनमाली पंडितजी ने ग्रहणदान लेने को कहा उन्होंने नहीं स्वीकार किया तब क्रोध करके पण्डित जी बोले कि हम इस स्थान का मेला बन्द करके अन्यत्र लगावैंगे। यह कह कर चले आये उस समय के बादशाह से

उनको बड़ा मेल मोहब्बत रहा उनसे मिल करके स्यमन्तक पंचक क्षेत्र का मेला बन्द कराके रुद्रकुंड को कुरुक्षेत्र बना कर मेला लगवा दिया। उसी दिन से भेड़ियाधसान हमारा देश सब लोग इसीको कुरुक्षेत्र मानने लगे। इस बातको क़रीब ३०० वर्ष से कुछ ऊपर हुआ। यह बात जीन रियासत में प्रसिद्ध है। कुरुक्षेत्र भूमि तो निश्चय है क्योंकि कुरुक्षेत्र बहुत दूर तक है। परंतु स्नान करने का मुख्य स्थान स्यमंतकपंचक ही शास्त्रों में लिखा है। यह बात श्रीमद्भागवत दशमस्कंध उत्तरार्द्ध ८२ के अध्याय में प्रसिद्ध है। यथा—

अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः। सूर्य्योपरागः स महानासीत् कल्पक्षये यथा ॥
तं ज्ञात्वा मनुजा राजन् पुरस्तादेव सर्वतः। स्यमन्तपंचकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥
निःक्षत्रियां महीं कुर्वन् रामः शस्त्रभृतां वरः। नृपाणां रुधिरौघेन यत्र चक्रे महा ह्रदान् ॥
रामह्रदेषु विधिवत् पुनराप्लुत्य वृष्णयः। ददुः स्वन्नं द्विजाग्रेभ्यः कृष्णो नो भक्तिरस्त्विति ॥

अर्थात् एक बार श्रीरामकृष्ण दोनों के द्वारकापुरी में रहते हुए प्रलयकाल के समान सूर्य्यग्रहण आ गया वह जानकर सब भारतवासी प्रजा ग्रहण से प्रथम ही अपने कल्याणार्थ स्यमंतकपंचक क्षेत्र को गये जहां सब क्षत्रियों को मारकर श्रीपरशुरामजी ने रुधिर से पाँच कुंड निर्माण किया है उसी रामह्रद में विधिपूर्वक सब यादवों ने स्नान करके सब ब्राह्मणों को दान दिया कि श्रीकृष्णजी में हम सब की अचल भक्ति हो ऐसा लिखा है। और भी सर्वत्र पुराणों में ऐसा ही लिखा है। इससे स्यमंतकपंचक में ही स्नानदानादिक कर्म करना चाहिये। वर्तमान कुरुक्षेत्र में स्यमंतकपंचक स्थान कहीं नहीं है। यह स्यमंतकपंचक स्थान इस कुरुक्षेत्र से ४० कोस पश्चिम है इस बात को

सब लोग जानते हैं विशेष क्या लिखैं कुरुक्षेत्रमाहात्म्य के अन्तर्गत श्रीरामह्रदमाहात्म्य है । उसमें विस्तार से सब बात लिखी है । जिनको सन्देह हो सो विद्वान् पंडितों से भी पूछकर जान सकते हैं । इस रामह्रद को आजकल रामहृदय कहते हैं और स्थान अर्थात् गाँव को रामरा कहते हैं । सब सज्जनों से यही बिनती है कि उसी स्थान पर सूर्य्यग्रहण का स्नान किया करैं । हम लोग कितने कष्ट करके जाते हैं परन्तु असली कुरुक्षेत्र का दर्शन भी नहीं होता सब परिश्रम वृथा हो जाता है । गीताजी में लिखा है कि जो शास्त्रोक्त विधि को छोड़कर कोई काम करते हैं उनको न सिद्धि मिलती है न सुख ही न परमगति ही को प्राप्त होता है । इससे शास्त्र के अनुकूल काम करना उचित है । यथा—यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः । न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न पराङ्गतिम् ॥ इत्यादि ।

परिक्रमा करने की विधि ।

हमारे में संत सब श्रीअयोध्या, श्रीमिथिला, तथा श्रीमथुरा, वृन्दावन और नैमिषारण्य आदि तीर्थों के परिक्रमा किया करते हैं सो बहुत ही उत्तम है । क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि जिस क्षेत्र में निवास करै उस क्षेत्र की वर्ष भर में एक बार भी प्रदक्षिणादि कर्म अवश्य करना चाहिये । परिक्रमा करने से मलमूत्रादि त्यागने का अपराध और क्षेत्र में रहने से जो कुछ पाप भूल से हो गया हो सो सब नाश हो जाता है । परिक्रमा न करने से श्रीअयोध्या वृन्दावनादि धामों में रहने से क्षेत्रवास की सिद्धि नहीं मिलती है । यथा पद्मपुराणे उत्तरखण्डे २२२ अध्याये—

यस्मिन् क्षेत्रे स्थितो जन्तुस्तं क्षेत्रमनुवत्सरम् । प्रदक्षिणादिभिर्धर्मैः स्वापराधान् क्षमापयेत् ॥
प्रतिसंवत्सरं चैव परिक्रामयाति यो नरः । क्षेत्रापराधदोषैश्च न स लिप्येत्तु पातकैः ॥

प्रदक्षिणमकुर्वाणः क्षेत्रसिद्धिं न विन्दति । तस्मात् प्रदक्षिणातीर्थे दातव्या च फलार्थिभिः ॥
हरेर्नामानि संजल्पन् प्रकरोति प्रदक्षिणाम् । पदे पदे स लभते कपिलादानजं फलम् ॥

अर्थात् जिस क्षेत्र में जीव रहे उस क्षेत्र की प्रतिवर्ष प्रदक्षिणादि धर्म्म से अपने अपराधों को क्षमा करावै। साल का साल नियमपूर्व्वक जो मनुष्य परिक्रमा करता है वह क्षेत्र के मलमूत्रादि त्यागने के नाना दोषों से और पापों से लिप्त नहीं होता है। इसलिये फल सिद्धि के लिये अवश्य परिक्रमा देना चाहिये। परिक्रमा करते समय केवल भगवत् का नामोच्चारण करै दूसरी चर्चा भूलकर भी न करै ऐसा करने से पद पद में कपिला गौदान करने का फल होता है। एवं बृहन्नारदीयपुराण में भी लिखा है—

ब्रह्मचर्य्यविधानेन हविष्याशी जितेन्द्रियः । शुद्धो द्विवासको भूत्वा भक्तवृन्दैः समन्वितः ॥
मनोवाक्कायजनितं पातकं चोपपातकम् । सर्व्वं नश्यति यत्नेन सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥
प्रीयंते पितरस्तस्य प्रीयंते सर्वदेवताः । प्रीयंते राघवो रामः स्वशक्त्या सीतया सह ।
प्रलापं वा विलापं वा मिथ्याभाषणमेव च । असद्वार्तादिकं सर्वं वर्जयेत् साधकोत्तमः ॥

अर्थात् ब्रह्मचर्यविधान से कंद मूल फल खाते हुए तात्पर्य्य जब तक परिक्रमा करै तब तक अन्न नहीं खाना चाहिये। फलाहार करना चाहिये। जितेंद्रिय होकर और शुद्ध दो वस्त्र अथवा कौपीन के सहित तीन वस्त्र धारण करके सज्जनों के सहित परिक्रमा करै। परिक्रमा में कोट, कुर्ता, पगड़ी, टोपी आदिक नहीं धारण करना चाहिये।

पवित्र होकर करना चाहिये इससे मन, वचन और शरीर से उत्पन्न छोटे बड़े सब पाप नाश हो जाते हैं और सब कामना मिलती है। उस पर पितर देवता सब प्रसन्न होते हैं। श्रीजानकीजी के सहित श्रीरामजी भी प्रसन्न होते हैं। परिक्रमा करते समय वृथा बकवाद, विलाप, मिथ्या भाषण, श्लील वार्तादि सब को त्याग देना चाहिये। नहीं तो उलटा पाप का भागी होना पड़ता है। बृहद्विष्णुपुराण के अंतर्गत मिथिलामाहात्म्य में लिखा है यथा—

पूर्वोक्तविधिना सम्यग्ब्रह्मचर्य्यव्रतेस्थितः। वामेनिष्ठीपनोद्गारमलमूत्राणि चोत्सृजेत्॥ अन्यथाचेच्चरेन्मौर्ख्यान् नरः प्राप्नोति किल्बिषम्। प्रयाति चापीमांल्लोकान् समद्वेषी भवेत्तु सः॥ तस्माच्छुद्धतनुःशांतो भजन् राममनन्यधीः। परिक्रान्तो लभेद्भक्तिं लोके मुक्तिं तथापरे॥ तत्राप्यशक्तश्चेत्कश्चिद्विधातुं धर्मसाधनम्। सहायं वै यथाशक्तिः कुर्य्याद्वा मार्गशोधनम्॥ परिक्रमावतां पुण्यं सोऽप्यवाप्नोत्यसंशयम्॥

अर्थात् पूर्वोक्त विधि से ब्रह्मचर्य्य व्रत में स्थित होकर परिक्रमा करे। और मलमूत्र, थूक, खखासा, नाक छींकना आदि कर्म बांई ओर करे दहिने ओर न करे यदि मूर्खता से करे तो पाप का भागी होना पड़ता है। वह मरके अधम लोक जाता है और जन्म २ श्रीरामजी का द्रोही होता है। इससे सर्वथा शुद्ध शरीर से शान्त होकर अनन्य बुद्धि से श्रीरामजी को स्मरण करते हुए परिक्रमा करने से लोक में श्रीरामजी की भक्ति मिलती है तथा परलोक में मुक्ति की प्राप्ति होती है। यदि परिक्रमा करने में कोई असमर्थ हो तो उनके लिये यह धर्म कहा है कि वह परिक्रमा करनेवालों के लिये धनसहायता करे अथवा मार्गशोधन अर्थात् परिक्रमा का मार्ग बनवा देवे इससे परिक्रमा करने का फल

मिलता है । बहुत से अज्ञ लोग डोली आदि सवारी पर चढ़कर परिक्रमा करते हैं सो नहीं करना चाहिये बड़ा दोष है यथा स्मृतिरत्नाकरे—

छत्रं तु हरते पादमर्धं हरति पादुका । यानं हरेत्त्रिपादं तु सर्वं हरति दोलिका ॥

अर्थात् छत्री लगाने से एक अंश पुण्य नष्ट होता है चरणपादुका से आधा पुण्य जूता पहने से तीन भाग और डोली आदि सवारी से सब पुण्य नाश हो जाता है इससे सवारी पर कभी परिक्रमा अथवा तीर्थ न करे । अब इसके आगे पूजन में वस्त्र धारण करने की विधि लिखते हैं । हारीतस्मृति में लिखा है ।

हरिचर्यापाककाले धार्य्यं पट्टांबरं सदा । तस्याभावे आविकं तु तद्भावे वस्त्रमेव हि ॥ १ ॥
ममालये सदा धार्य्यं पट्टकूलं सदा बुधैः । विष्णोः पूजनकाले च पाककाले विशेषतः ॥ २ ॥
विष्णोरर्चनकाले तु धार्य्यं पट्टं प्रयत्नतः ॥

अर्थात् भगवत् के पूजनकाल में और पाक (रसोई) बनाने के समय में सर्वदा पीतांबर धारण करे पीतांबर न हो तो ऊण वस्त्र । यदि ऊण वस्त्र भी न हो तो सूत वस्त्र धारण करे । भगवान् कहते हैं कि हमारे मन्दिर में पंडित लोग सदा पीतांबर धारण करें । पूजा में रसोई में यत्नपूर्वक विशेष करके पीतांबर धारण करे । इसीसे हमारे में यह रीति प्रथम रही अब कहीं २ है सब छूटती जाती है । सब सज्जनों से बिनती है, इस पर अवश्य ध्यान देकर सुधार करें । प्रथम यह टकसार रहा कि जब स्नान करके संत आसन पर आते रहे । तब से जब तक प्रसाद न पाते रहे तब तक किसी को कोई स्पर्श नहीं करते रहे और न विना धुले वस्त्र को तथा दरी, जाजिम आदि बिछौना को छूते

रहे । अब तो क्या पुजारी, क्या रसोइया, चाहे जहां से घूमकर अथवा जिसको छूकर आवें झट पूजा रसोई में घुस

रहे। अब तो क्या पुजारी, क्या रसोइया, चाहे जहां से घूमकर अथवा जिसको छूकर आवें झट पूजा रसोई में घुस जाते हैं कोई मना नहीं करते हैं, यह भी टकसार नाश हो गया। प्रथम संत सब नील वस्त्रवाले को पंक्ति में नहीं बैठने देते रहे। अब यह भी रीति छूट गई कहीं कहीं है। क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि नील से रंगे वस्त्र को धारण करके पूजा पाठ कुछ भी करे तो नष्ट हो जाता है यदि पंक्ति में बैठे तो पंक्ति भ्रष्ट हो जाती है। नीली वस्त्र को पहन कर कभी रसोई न करे। और न पंक्ति में फेरे बड़ा दोष है हां यदि पीतांबर हो तो नील का दोष नहीं है यथा आंगिरास्मृति तथा संग्रहसारावल्यां ॥

नीली रक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपदीयते। नोपतिष्ठति दातारं भोक्ता भुंक्ते तु किल्बिषम् ॥
नीली रक्तेन वस्त्रेण यत्पाकं अपितं भवेत्। तेन भुंक्तेन विप्राणां दिनमेकमभोजनम् ॥
नीलं पटे जलं तक्रे तथा गोम्लेच्छमंदिरे। भिक्षाऽन्नं पंचगव्यं च पवित्राणि युगे युगे ॥

अर्थात् नीली वस्त्र धारण कर जो अन्न परसा जाता है उसका फल दाता को नहीं मिलता है और भोजन करने वाला भी पाप को खाता है। नीली वस्त्र को पहन कर जो रसोई किया जाता है उसको पाकर ब्राह्मण एक दिन उपवास करे पीतांबर में नील छांछ में जल यमन के घर में गौशाला भिक्षा का अन्न और पंचगव्य यह सब चारों युग में पवित्र माना है। इससे नील किनारी अथवा काली किनारी वाली धोती नहीं पहना चाहिए।

शास्त्र में लिखा है कि अपना डोलडाल का पात्र रसोई पूजा में नहीं लेजावे और न अपने पात्रको भगवत्पात्र में

मिलावे बड़ा दोष है प्रथम में यह भी रीति रही अब कमती पड़ती जाती है सो नहीं करना चाहिए यथा शाण्डिल्य-संहितायां भक्तिखण्डे ।

स्वपात्रं परपात्रं च भगवत्पात्रमेव यत् । स्नानपात्राण्यन्यपात्राणि मेलयेन्न कदाचन ॥

अर्थात् अपना पात्र दूसरे का पात्र और भगवान् का पात्र स्नान करने का पात्र तथा और किसी का पात्र एक में कभी न मिलावे भाव अलग २ रखना चाहिए । इसीसे महात्मा सब किसी के पात्र नहीं लेते हैं और न किसी को अपना पात्र ही देते हैं क्योंकि चार वस्तु अपनी ही शुद्ध होती हैं दूसरे की नहीं यथा ।

आत्मशय्या च वस्त्रं च जायाऽपत्यं कमण्डलु । आत्मनः शुचीन्येतानि परेषामशुचीनि तु ॥

अर्थात् आसन, शय्या, वस्त्र, संतान, स्त्री, और कमण्डलु नाम जलपात्र यह सब अपनेही शुद्ध होते हैं दूसरे की नहीं इसी से महात्मा किसी के आसन पर बैठते नहीं और न किसी के धारण किये वस्त्र ही को धारण करते हैं । अब यह भी रीति कमती होगई है । प्रथम संत सब भगवत्पात्र किसी को रसोई जल भरने को नहीं देते रहे अब तो आशा के मारे दे भी देते हैं सो नहीं देना चाहिए । गृहस्थ का पात्र लेवे तो अग्नि से शुद्ध करके रसोई आदि करना चाहिए । अब तो यह सब विचार ही नष्ट होगया । प्रथम मुख में कपड़ा बाँधकर अमानिया तथा रसोई करते रहे पंक्ति में मौन होकर प्रसाद पाते रहे अब तो यह टकसार ही बिलकुल जाता रहा यदि कहो तो भी नहीं मानते हैं । सो नहीं अवश्य करना चाहिए । शाण्डिल्यसंहिता के भक्तिखण्ड में लिखा है ।

वाससा मुखमाच्छाद्य द्वारमाच्छाद्य प्रयत्नतः। पक्कान्नं चाथ शाकानि दौग्ध सिद्धान्नमापचेत् १॥

अर्थात् वस्त्र से मुख और द्वार को यत्नपूर्वक ढांक कर पक्की रसोई अथवा कची रसोई शाक भाजी दुग्ध कुछ भी हो सब को करे। ऐसा लिखा है। और शास्त्र में लिखा है कि विना भोग लगाए न पावे यदि भगवान् शयन करजावें तो भी तुलसीदल छोड़कर पूर्व का भोग थोरा मिलाकर पाना चाहिए। यथा शाण्डिल्यः।

क्षुद्रंवस्तु समायातं मनसा तन्निवेद्य च। अश्नीयान्मिश्रितं कृत्वा साक्षात्पूर्वं निवेदितैः॥

अर्थात् भगवान् शयन किए पर कुछ अल्प वस्तु आजावे तो मानसिक अर्पण करके प्रथम का साक्षात् भोग लगा हुआ मिलाकर तब पाना चाहिए। अब तो यहां तक होगया है कि यदि तुलसीदल न मिले तो कण्ठी में ही छुवाकर पालेते हैं सो नहीं चाहिए। ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि इतनी वस्तु पृथिवी पर न धरनी चाहिए।

प्रदीपं शिवलिंगं च शालग्रामं मणिं तथा। प्रतिमां यज्ञसूत्रं च सुवर्णं शंखमेव च॥

अर्थात् प्रज्वलित दीप, शिवलिङ्ग, शालग्राम, मणि, मूर्ति, ग्रंथि दिया हुआ यज्ञोपवीत, सुवर्ण, शंख, गरुड़घण्टी, हीरा, मूंगा, गोमूत्र, गोवर, घृत, चरणोदक, पुष्प, तुलसीदल, पुरुषसूक्त मंत्र, मंत्र जपने की माला, पुष्पमाला, कपूर, हलदी, मलयगिरि चन्दन की लकड़ी, रुद्राक्ष की माला, कुश का मूल, पुस्तक इन सब को पृथिवी पर कभी न धरे धरे तो भिन्न २ दोष विस्तार से वर्णन किया है। इसलिए यह भी अवश्य जानना चाहिए।

शास्त्र में लिखा है कि पंक्ति में अलग २ बैठे एक को एक छूए नहीं फेरनेवाले को पानेवाले न छूए पानेवाले को फेरने

वाले न छूए। पंक्ति में मौन होकर बैठे नहीं तो राम धुन करे। पंक्ति में हवा न छोड़े प्रथम ही न उठे, यदि एक भी प्रथम उठे तो पंक्ति भर जूठा हो जावे।

शिरोवेष्टेन यो भुंक्ते यो भुंक्ते दक्षिणे मुखे। वामभागे जलं स्थाप्य सोपि चाण्डाल उच्यते १ ॥

अर्थात् शिर में कपड़ा बांध कर जो पाते हैं जो दक्षिण मुख में बैठ कर बायांभाग में जल को धरकर पाते हैं वह भी चाण्डाल ही कहा है सो सब चाल हमारे में अभी तक नहीं है। हां पकी रसोईं में कोई २ शिर बांधकर पाते हैं सो नहीं चाहिए। यह रीति प्रायः देखा देखी चल गई है। शाण्डिल्यसंहिता भक्तिखण्ड में लिखा है ॥

नाधरोच्छिष्टके योज्यं स्वर्णताम्रे सुबुद्धिभिः। तत्र स्थितं तु पानीयं शुचिस्तीर्थां बुवद्भवेत् ॥
दक्षप्रकोष्ठे चाधाय पिबेद्वामेन पाणिना। दक्षिणेन पिबेत्पात्रं यदि वामेन पूरयेत् ॥

अर्थात् बुद्धिमान् को चाहिए कि स्वर्ण तामा के पात्र में जूठा मुख लगाकर जल न पीवे क्योंकि स्वर्ण ताम्र के पात्र में जल तीर्थजल के समान पवित्र रहता है। दक्षिण कोठा में जल धरे वहीं से बामा हाथ से जल लेकर पीवे यदि बामा हाथ न पहुँचै तो दहिना ही से पीए। परंतु एक बार पीवे दूसरी बार नहीं। मृत्तिका एक बार स्वर्ण पात्र के समान है।

पंक्ति में लोहे के पात्र से तथा बामा हाथ से न फेरे और न पंक्तिभेद करे नहीं तो भारी दोष है "पंक्तिभेदस्य कर्ता च गोसहस्रवधः स्मृतः" अर्थात् स्कन्दपुराण में लिखा है कि पंक्ति में भेद करनेवाले को एक सहस्र गौ वध का पाप

रा० प० लगता है इससे ऐसा अधर्म कभी न करे। अब जहां तहां मुँहदेखी होने लगी है सो छोड़ देना चाहिए। और एकादश

लगता है इससे ऐसा अधर्म कभी न करे । अब जहां तहां मुँहदेखी होने लगी है सो छोड़ देना चाहिए । और एकादश काम साथ २ नहीं करना चाहिए । कूर्मपुराणे १६

एकशय्यासनं पंक्ति भाण्डपक्वान्नमिश्रितम् । याजनाध्यापने योनिस्तथैव सहभोजनम् ॥ १ ॥

सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च । एकादशैते निर्दिष्टा दोषाः सांकर्यसंज्ञिताः ॥ २ ॥

अर्थात् एक शय्या पर दो मिल कर न सोवे १ एक आसन पर भी दो मिलकर न सोवे, पंक्ति में एक आसन पर दो मिलकर न बैठे ३ एक पात्र में दो मिलकर न पावे ४ चाना चबेना फलादि को छोड़ कर सिद्धान्न मिश्रित को दो मिलकर न पावे ५ दो मिलकर यज्ञ अर्थात् कोई प्रकार के पूजा मंत्र जपादि साथ मिलकर न करे ६ दो मिलकर एक पुस्तक में न पढ़े ७ दो मिलकर एक स्त्री से विवाहादि व्यवहार न करे ८ स्त्री के साथ भोजन न करे ९।९० वर्ष की अवस्था से अधिक अवस्थावाले के संग न पढ़े १० तैसे ही वृद्ध के संग यज्ञादि न करे ११ यह सब बड़ा दोष शास्त्र में लिखा है । इससे शयन और भोजन एक संग न करना चाहिए । अब यह भी रीति बिगड़ी जाती है । आपस में दंडवत् करने की विधि कहते हैं । स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड में लिखा है ।

सभायां यज्ञशालायां देवतायतनेष्वपि । प्रत्येकं तु नमस्कारो हंति पुण्यं पुरा कृतम् ॥

अर्थात् सभा में यज्ञशाला में भगवत् मंदिर में अलग २ दण्डवत् करने से पूर्व का पुण्य नाश होजाता है । और भी लिखा है कि नास्तिक को, शास्त्र की मर्यादा तोड़नेवालों को, शठको, चोरको, धूर्त को, पाखण्डी को, पतित को, संस्कारहीन को, वेद बेचनेवाले को, कृतघ्नी को, पापी को, स्नान करते हुए को, शौच जाते हुए को, अशुद्ध को

जलपात्र, पुष्प, तुलसी लिए हुए को, प्रसाद पाते हुए को, विवादी को, सोते हुए को, बहुतों के बीचमें बैठे हुए को, श्राद्ध करते हुए को, पूजन करते हुए को, यज्ञतर्पण करते हुए को, दण्डवत्प्रणाम नहीं करना चाहिए।

कुर्वते वन्दनं यस्तु न कुर्यात्प्रतिवंदनम्। नाभिवाद्यः स विज्ञेयो यथा शूद्रस्तथैव च॥

अर्थात् दण्डवत् करने पर भी जो दंडवत् नहीं करते वह दंडवत् नहीं है जैसे शूद्र है उसी प्रकार से उसे भी जानना चाहिए। इससे परस्पर दंडवत् प्रेमपूर्वक करना चाहिए। क्योंकि दंडवत् के मध्य में भगवान् उपस्थित होते हैं। जो दंडवत् करनेवाले को दंडवत् नहीं करते हैं वे भगवान् के द्रोही होते हैं।

यज्ञोपवीत धारण विधि।

हमारे में बहुधा सज्जन लोग बिना मंत्र ही दिए यज्ञोपवीत धारण कर लेते हैं, कितने साधु श्रीराम मंत्र ही से मंत्रित करके यज्ञोपवीत धारण करते हैं। कोई २ दूसरे का धारण किया हुआ धारण करलेते हैं सो नहीं करना चाहिए भारी दोष है। शास्त्र में लिखा है कि मालाकार यज्ञोपवीत धारण करे परंतु इतने काल में नहीं यथा।

अग्न्यागारे गवां गोष्ठे होमे जाप्ये तथैव च। स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानां च सन्निधौ १

उपासने गुरूणां च सन्ध्ययोः साधुसंगमे। उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेष सनातनः॥ २॥

अर्थात् अग्निहोत्रस्थान में, गौशाला में, होम करती समय में, मंत्र जपने में, वेदाध्ययन में, भोजन करते समय में, साधु ब्राह्मणों के समीप में, श्रीगुरुस्वामीकी सेवा में और दोनों संध्या करती समय में नित्य उपवीती अर्थात् मालाकार न पहने जैसा है वैसेही हो यह सनातन की विधि है। विशेष देखना हो तो "वैष्णवकुलभूषणसारसंग्रह"

देखो, यज्ञोपवीत जब नवीन धारण करना हो तो प्रथम ब्रह्मगायत्री से तीन बार जल लेकर अभिमंत्रित करके फिर इस मंत्र से मंत्रित कर धारण करे यथा—

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥ ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि इति॥

चरणपादुका धारण विधि।

हमारे में श्रीमहन्तजी को छोड़ कर और कोई चरणपादुका नहीं धारण करते रहे यह पूर्व की रीति रही। अब नहीं है। अब तो सब कोई धारण करते हैं। शास्त्र में लिखा है कि पूज्यपुरुषों के सामने चरणपादुका नहीं धारण करना चाहिए। दूसरे की धारण की हुई चरणदासी और खड़ाऊं नहीं धारण करे। चरणपादुका पहनकर डोल डाल नहीं जाना चाहिए बड़ा दोष है। हमारे में कोई २ संत लोग ऐसा करते हैं, सो नहीं करना चाहिए। अंगिरास्मृति में लिखा है कि इतने स्थान पर खड़ाऊं न धारण करे यथा।

अग्न्यागारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ। आचरेज्जपकाले च पादुकानां विसर्जनम्॥
पादुकासनमारूढो गेहात्पंच गृहं व्रजेत्। छेदयेत्तस्य पादौ तु धार्मिकः पृथिवीपतिः॥
अग्निहोत्री तपस्वी च श्रोत्रियो वेदपारगः। एते वै पादुकैर्यान्ति शेषान्दण्डेन ताडयेत्॥

अर्थात् अग्निहोत्रस्थान में, गौशाला में, देवता के मंदिर में, ब्राह्मणों के समीप में और पाठपूजा मंत्रादि के जपने में पादुका को अलग त्याग देना चाहिए। साधारण मनुष्य यदि खड़ाऊँ पर चढ़कर अपने घरसे पांच घरतक जावे तो

धर्मात्मा राजाको चाहिए कि उसके दोनों पैर काट डाले तब दोष से निवृत्त हो नहीं तो नहीं अग्निहोत्री, तपस्वी, और श्रोत्रिय चारों वेद के जाननेवाले, साधु, महात्मा, संन्यासी ये सब खड़ाऊँ पहनकर जाते हैं भाव इनको रोक नहींहै और सबको डण्डे से मारे। अब तो कलि प्रभाव से नीच लोग भी खड़ाऊं पहनते हैं क्या किया जावे। शाण्डिल्यसंहितायाम्।

उपानद्भ्यां चरेन्मार्गे अमेध्यान् वर्जयेन्नपि। स्नानश्चरेत्पादुकाभिर्गृहस्नातो न संचरेत्॥
मलप्राये पथिस्नातः सोपानत्कोम्बु चाहरेत्॥

अर्थात् स्नान करके खड़ाऊं पहन मलमूत्र को त्यागकर भी मार्ग में चले विना स्नान किए न चले। मार्ग में प्रायः मलमूत्र रहते हैं इसलिए चरणपादुका पहिनकर पूजा रसोई का जल भरे। चरणदासी भी पहनकर काम कर सकते हैं। यह नियम गृहस्थों के लिए है विरक्तों के लिए नहीं।

पादयोः पादुकां धृत्वा देवं तीर्थं गुरुं प्रति। गोष्ठे वृन्दावने होमे न गन्तव्यं कदाचन॥

अर्थात् चरणपादुका धारण करके देवमंदिर में, तीर्थों में तथा श्रीगुरु के पास, गोशाला में, तुलसी के बाग में और यज्ञस्थान में कभी न जाना॥

अब वस्त्र धारण विधि कहते हैं। हारीत स्मृतौ।

तामसं वस्त्रमेकं तु राजसंवसनद्वयम्। कौपीनसहितं यत्तु सात्त्विकं मुनिभिः स्मृतम्॥ १॥
कौपीनं कटिसूत्रं च वस्त्रस्योपरि बंधनम्। यावन्न धारयेद्विप्रस्तावच्छूद्रो न संशयः॥

अर्थात् एक वस्त्र तामसी है दो वस्त्र रजोगुणी कौपीन के सहित तीन वस्त्र सात्त्विक हैं ऐसा मुनियों ने कहा है।

कौपीन और कटिसूत्र के ऊपर कटिवस्त्र (अँचला) जबतक धारण न करे तबतक ब्राह्मण शूद्र है इसमें संदेह

कौपीन और कटिसूत्र के ऊपर कटिवस्त्र (अँचला) जबतक धारण न करे तबतक ब्राह्मण शूद्र है इसमें संदेह नहीं है। यह चाल अभी ठीक है कोई २ कटिसूत्र नहीं लगाते हैं सो ठीक नहीं अवश्य लगाना चाहिए। नारद-पंचरात्र में लिखा है यथा ॥

न सुवर्णादिभिः कुर्य्यान्न दार्वं बैल्वमेव वा। नारिकेलफलस्यैव श्रीचूर्णपात्रमुच्यते ॥
कृत्वा करण्डं बिल्वस्य फले पक्वे मनोहरे। हारिद्रं पूरयेच्चूर्णं धारयेद्विष्णुप्रीतये ॥
ऊर्द्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु अन्यद्द्रव्यं न धारयेत् ॥

अर्थात् सोना चांदी की श्रीदानी न बनावे श्रीदानी बेल की अथवा नारियल का बनाकर हलदी की चूर्ण (श्री) भर कर लगावे श्रीभगवान् को अर्पण करके पीछे लगावे। श्री और की नहीं धारण करे दोष है। यह भी चाल ठीक है कोई २ महात्मा श्री शीशी में, कागद में धरते हैं सो नहीं चाहिए। मनमुखी काम न करे जैसा श्रीगुरु महाराज तिलक लगाए हों उसी प्रकार से सर्वदा लगाना चाहिए। आलस नहीं करे। देखादेखी भी नहीं करे इस से धर्म नष्ट हो जाता है पातकी होना परता है। इससे इन बातों पर खूब ध्यान देना चाहिए यह विनती है।

अब गुरुके लक्षण कहते हैं ॥

शास्त्र में लिखा है कि गुरु ब्राह्मण कुलके करना चाहिए। जो विद्वान् हों, शांति, क्षमा, दयालु, जितेन्द्रिय आदि गुणसंपन्न ज्ञानवान्, गुणवान्, बुद्धिमान् और भगवान के भक्त हों। यदि सब गुणसंपन्न हों और भक्त न हों तो गुरु नहीं करना चाहिए। नारदपंचरात्र भरद्वाजसंहिता में लिखा है कि सात प्रकार के गुरु नहीं करना चाहिए यथा।

न जातु मंत्रदा नारी न शूद्रो नांतरोद्भवः । नाभिशस्तो न पतितः कामकामोप्यकामिनः ॥
सप्तपुरुषविज्ञेये संततैकांतनिर्मले । कुले जातो गुणैर्युक्तो विप्रः श्रेष्ठतमो गुरुः ॥

अर्थात् स्त्री १ शूद्र २ अंतरोद्भव अर्थात् ब्राह्मण को क्षत्रिय, क्षत्रिय को वैश्य, वैश्यको शूद्र मंत्र न देवे । इसीको अंतरोद्भव कहते हैं ३ निन्दनीय दोष करके युक्त ४ पतित ५ कामी पुरुष ६ और अकामी ७ भाव संन्यासी, उदासी आदि आश्रमहीन विरक्त इन सातों से मंत्र नहीं लेना चाहिए । जो उत्तम ब्राह्मण कुल में जन्म लिए हों और पूर्वोक्त सर्वगुण सम्पन्न हों उन्हीं को गुरु करना चाहिए ।

हमारे में अब दो अन्याय विशेष होते हैं एक तो स्त्री अवधूतानी से भी मंत्र लै लेते हैं सो नहीं लेना चाहिए । यदि कोई कहे कि श्रीलक्ष्मीजीने श्रीविष्वक्सेनजीको दिया एवं श्रीजानकीजी ने श्रीहनुमानजी को दिया तो यह कहना ठीक नहीं है । क्योंकि वे तो ईश्वरी हैं, उन्हीं के द्वारा जीवको प्रभु स्वीकार करते हैं । इसलिए यह उपमा देना अयोग्य है । दूसरा अन्याय यह है कि शूद्रकुलके बालक होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय को शिष्य करके साष्टांग करवाते हैं और अपना जूंठा खवाते हैं सो भी ठीक नहीं है । यह भी भारी पाप है । इसीसे अपने साधुओंके ग्रंथ श्रीमन्त्रमुक्तावलीमें लिखाहै यथा ॥

ब्राह्मणं क्षत्रियोदद्यात्कुष्ठव्याधिः प्रवर्तते । क्षत्रियं वैश्यो दद्याच्च स्त्रिया हानिः प्रजायते ॥
वैश्यं शूद्रोपि दद्यात्तु वंशहीनो भवेन्नरः ॥

अर्थात् ब्राह्मण को क्षत्रिय मंत्र देवे तो पापभोग करके दूसरे जन्ममें कोढ़ी हो, क्षत्रिय को वैश्य देवे तो स्त्रीहानि हो, वैश्य को शूद्र देवे तो वंशहीन हो । इसी प्रकार से बहुत विस्तार से कहा है "वैष्णवकुलभूषणसारसंग्रह" में वर्णन है ।

हां यदि ज्ञानी हो तो जाति विचार करना अयोग्य है सो यह बात होना कठिन है। जो कोई बड़े लोगों की उपमा देते हैं सो भूल है क्योंकि उतनी शक्ति हममें नहीं है। अपने २ दिलमें विचार करके देखिए विशेष क्या कहें। इससे दीक्षा विचार से लेना देना चाहिए।

अब शिष्य करने की विधि कहते हैं।

शास्त्र में लिखा है कि शांत, सुशील, नम्र, शुद्ध, श्रद्धावान्, ज्ञानवान्, गुणवान्, क्षमावान्, कुलीन, बुद्धिमान्, चाल चलन उत्तम हो सब प्रकार से परीक्षा करके तब शिष्य करे। गौतमीय तंत्रे ५ अ०

वर्षैकेन भवेद्योग्यो विप्रः सर्वगुणान्वितः। वर्षद्वयेन राजन्यो वैश्यस्तु वत्सरैस्त्रिभिः॥
चतुर्भिर्वत्सरैश्शूद्रः कथिता शिष्ययोग्यता॥

अर्थात् सर्वगुण संपन्न ब्राह्मण एक वर्ष में शिष्य करने योग्य होता है "ना संवत्सरवासिने प्रब्रूयात्" इस वेद वचन के अनुकूल विना वर्ष दिन देखे उपदेश न देना चाहिए। दो वर्ष में क्षत्रिय, तीन वर्ष में वैश्य,चार वर्ष में शूद्र शिष्य करने योग्य होता है। इससे खूब देख कर शिष्य करना चाहिए। नहीं तो हाट का गुरु बाट का चेला हो जाता है। गृहस्थी शिष्य से विरक्त शिष्य के लिए खूब विचार करना चाहिए। प्रथम कण्ठी उत्तम स्थान पर पूर्व मुख शिष्य बैठावे। आप उत्तर मुख होकर बैठे द्वादश तिलक करके गले में कण्ठी धारण करावे। फिर धनुष बाण शंख चक्र लगाकर रामदास, कृष्णदास आदि भगवत् नाम युक्त नाम राखें पीछे प्रेमपूर्वक मंत्र देवे यथा गौतमीय तंत्रे ५ अध्याये।

दक्षकर्णे वदेन्मंत्रं त्रिवारं पूर्णमानसः। मंत्रार्थं मंत्रवीजं वै तच्छक्तिं तत्फलादिकम् ॥

अर्थात् दहिने कान में पूर्ण मन से तीन वार मंत्र कहे मंत्रार्थ मंत्र का वीज मंत्र की शक्ति फलादिक सब उपदेश कर देवे। रामउपासक को तीन मंत्र देना चाहिए जोकि रामपटल धामक्षेत्र में कहि आए हैं। विना रहस्यत्रय जाने श्रीरामोपासक नहीं हो सकते हैं। इससे तीनों मंत्रोंको कण्ठ कर लेना चाहिए यह विनती है।

कोई २ कहते हैं कि स्त्री को गुरु नहीं करना चाहिए। स्त्री को पति ही गुरु है। सो यह कहना सर्वथा शास्त्र-विरुद्ध है। भगवत् मंत्र सबको लेना चाहिए। देखिए पद्मपुराण उत्तर खण्ड २५४ अध्याय में लिखा है कि एक दिन पार्वतीजी शिवजी से बोलीं कि हे भगवन् हमारी इच्छा है भगवान् के पूजन स्मरण करने की सो आपकी क्या आज्ञा होती है। शिवजी बोले प्रिये बहुत अच्छा है इससे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। परन्तु वैष्णव हुए विना भगवान् का भजन स्मरण वृथा है। इसलिए तुम श्रीवामदेव ऋषि की शिष्या (चेली) होकर भजन करो यथा ॥

गुरूपदेशमार्गेण पूजयित्वैव केशवम्। प्राप्नोति वांछितं सर्वं नान्यथा भूधरात्मजे ॥ समेत्य तं गुरुं देवि पूजयित्वा प्रणम्य च। विनिता प्रांजालिर्भूत्वा उवाच मुनि सत्तमम् ॥ भगवंस्त्व-त्प्रसादेन सम्यगाराधनं हरेः। करिष्यामि द्विजश्रेष्ठ त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ इत्युक्तस्तु तया देव्या वामदेवो महामुनिः। तस्यै मंत्रवरं श्रेष्ठं ददौ सविधिना गुरुः ॥

अर्थात् शिवजी बोले कि हे भूधरात्मजे गुरुउपदेश के द्वारा भगवान् का पूजन करके मनुष्य सब मन वांछित फलों को प्राप्त करते हैं अन्यथा नहीं। तुम वामदेवजी के पास जाव। शिवजी की आज्ञा पाकर गुरु वामदेवजी के पास

पहुँचकर षोडशोपचार पूजन और प्रणाम करके नम्रतापूर्वक बोलीं । हे भगवन् आपकी कृपा से मैं सब प्रकार से भगवत्पूजन करूंगी सो आप आज्ञा दीजिए । ऐसा कह कर पार्वतीजी चुप होगईं तब श्रीवामदेव मुनिने भगवति पार्वतीजी को विधिपूर्वक अर्थात् पंचसंस्कारपूर्वक श्रेष्ठ मंत्र दिया । इत्यादि लिखा है इससे स्त्री को भी अवश्य मंत्र लेना चाहिए । शास्त्र में लिखा है स्त्री पुरुष दोनों को एक गुरु से मंत्र लेना चाहिए । विशेष देखना हो तो श्रीवैष्णवकुलभूषणसारसंग्रह देखिए ।

गुरु शिष्य का लक्षण कण्ठी तिलक का विधान वैदिक तांत्रिक मंत्र का निर्णय दीक्षा का मास तिथि का निर्णय मंत्र जपने की विधि आसन विधि आदि समग्र विषय यदि जानने की इच्छा हो तो वैष्णवकुलभूषणसारसंग्रह १ वैष्णवधर्मदिवाकर २ श्रीराममंत्रपरमवैदिकसिद्धान्त ३ इन सब ग्रन्थों को अवश्य देखिए । यह सब ग्रन्थ चारों सम्प्रदाय के लिए हैं ।

नामसंस्कार की विधि ।

हमारे में नामसंस्कार की रीति कुछ अब विगड़ गई है जैसे कि शंकरदास गणेशदास आदि अनेकन नाम धरना ठीक नहीं है । क्योंकि हम सब तो भगवद्दास हैं इसलिए भगवत्संबंधी नाम होना चाहिए ।
जैसा कि पाराशरस्मृति उत्तरखण्ड में लिखा है यथा ।

यो जयेन्नाम दासान्तं भगवन्नामपूर्वकम् । तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्यभागी भवेन्नरः ॥१॥

शक्त्यावेशावताराणां वर्जयेन्नाम वैष्णवः । नाम दद्यात्प्रयत्नेन वैष्णवं पापनाशनम् ॥ २ ॥

अर्थात् भगवन्नामपूर्वक अंतमें दास शब्द जोड़ देवे भाव रामदास, कृष्णदास, वासुदेवदास, केशवदास, रघुनाथदास,

नारायणदास इत्यादि इससे सब पाप नाश होते हैं और मनुष्य पुण्य के भागी होते हैं, इसीसे अजामिलजी तरगए। हारीतस्मृति में लिखा है कि शक्ति आवेशादि अवतारों के नाम त्याग देवे। भाव शक्ति अवतार मत्स्य, कच्छप, वाराह, आवेशावतार परशुराम इनके नाम जैसे कि मच्छदास, कच्छपदास, वाराहदास, परशुरामदास इत्यादि नाम न राखे यत्न से वैष्णव नाम राखे जिससे पाप नाश होवे सो करना चाहिए। और वृन्दावनदास, द्वारकादास, मथुरादास, यमुनादास, तुलसीदास, अयोध्यादास, सरयूदास इत्यादि दासानुदासों के संबन्ध नाम होने में कोई हानि नहीं है। यहां पर जो भूल हुआ हो सो क्षमा करिएगा। हमारे साधुओं में जहां तहां पांच गायत्री पूछी जाती हैं। श्रीरामगायत्री १ ब्रह्मगायत्री २ सूर्यगायत्री ३ जलगायत्री ४ और श्रीगुरुगायत्री, यही पांच हैं उनमें श्रीरामगायत्री और सूर्यगायत्री तो ऊपर रामपटल में लिख आये हैं। तीन गायत्री यहां पर लिखते हैं सो जान लीजिए।

ब्रह्मगायत्री।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

श्रीगुरुगायत्री।

ॐ गुरुदेवाय विद्महे, परब्रह्माय धीमहि, तन्नो गुरुः प्रचोदयात् ॥ २ ॥

जलगायत्री।

ॐ जलबिंबाय विद्महे, नीलपुरुषाय धीमहि, तन्नस्त्वम्बु प्रचोदयात् ॥ ३ ॥

एकादशी आदि व्रतों के विधान।

शास्त्र में लिखा है कि एकादशी, श्रीरामनौमी, श्रीजानकीनौमी, श्रीकृष्णाष्टमी, श्रीराधाष्टमी, श्रीनरसिंह चतुर्दशी,

रा० प० श्रीवामनद्वादशी आदि व्रत वैष्णवों को अवश्य रहना चाहिए। न करने से भारी दोष होता है। व्रत में निराहार रहना

श्रीवामनद्वादशी आदि व्रत वैष्णवों को अवश्य रहना चाहिए। न करने से भारी दोष होता है। व्रत में निराहार रहना सबसे उत्तम है। जल अथवा दूध पीना मध्यम फल है। और कन्दमूल फलादिकों को पाना अधम है। इससे व्रत का फल नहीं होता है। हां अन्न पाने के दोषों से बच जाते हैं। क्योंकि व्रत के दिन अन्न पाने से नरक में जाना पड़ता है ऐसा धर्मशास्त्र में लिखा है यथा।

रवेन्दुग्रासे हरिजन्मकाले कन्याप्रदाने द्विजभोजने च। प्राणप्रयाणे हरिवासरे च यदन्नं भुंक्ते नरकं प्रयान्ति ॥ १ ॥

अर्थात् सूर्य चन्द्र के ग्रहण में, श्रीरामकृष्ण नरसिंह वामन आदि भगवान के जन्मकाल में तथा कन्यादान में अर्थात् कन्यादान में व्रत रहना परता है यदि कन्यादान के पूर्व में क्षुधा लग जावे तो अन्न नहीं पाना चाहिए कुछ फलाहार कर लेना चाहिए। सो न करके अन्न पा लेवे और ब्राह्मण साधुओं के भोजन कराने में यदि प्रथम भूख लग जावे तो अन्न नहीं खाना चाहिए। कुछ फलाहार कर लेवे। सो न करके अन्न पावे। कोई मर जावे उस काल में जो अन्न पा लेवे। हरिवासर नाम एकादशी के दिन में जो अन्न को पाते हैं वह नरक में अवश्य जाते हैं। इससे व्रत में अन्न खाना दोष है। क्योंकि व्रत के दिन सब पाप अन्न में निवास करते हैं। अन्न पाने से सब पापों के भागी होना परता है। इसलिए मत्स्यपुराण में लिखा है यथा।

स्वमातृगमनं वरं वरं गोमांसभक्षणम् ॥ वरं हत्या सुरापानं नैकादश्यां तु भोजनम् ॥ १ ॥

अर्थात् अपनी माता के साथ भोग करना श्रेष्ठ है। गोमांस खाना श्रेष्ठ है। जीवहत्या करना, मद्य पीना श्रेष्ठ है परंतु

एकादशी को अन्न पाना श्रेष्ठ नहीं है । इस बात को सब संत जानते हैं कि व्रत के दिन अन्न छूना मना है कोई २ संत दलील करते हैं कि यदि भगवत्प्रसाद मिल जावे तो खूब पा लेना चाहिए कुछ दोष नहीं है । सो यह कहना ठीक नहीं है । शास्त्र में लिखा है कि अपने से अन्न भोग लगाकर न पावे । यदि अनाश्रित कोई दे देवे तो भी सब पाना मना है । अमलाफलमात्र लेना चाहिए । क्योंकि व्रत रहना भी तो भजन ही है । इससे अन्न नहीं पाना चाहिए । कोई २ संत पा लेते हैं सो हठ कर पाना ठीक नहीं व्रत अवश्य करना चाहिए ।

एक गुरु को छोड़ कर दूसरा गुरु न करना चाहिए । हमारे में कोई २ साधु किसी मूर्खों के बहकाने से एक गुरु को छोड़ कर दूसरा गुरु कर लेते हैं सो नहीं करना चाहिए यदि शैव शाक्त हो तब तो शैव शाक्त अवैष्णव गुरु को छोड़ कर वैष्णव गुरु करना चाहिए इसमें दोष नहीं है । यथा पद्मपुराणे ।

अवैष्णवोपदिष्टं चेत्पूर्वमंत्रं परित्यजेत् । पुनश्च विधिना सम्यग्वैष्णवाद्ग्राहयेन्मनुम् ॥ १ ॥

अर्थात उत्तरखण्ड २२६ अध्याय में शिवजी का वचन है पार्वतीजी से कि अवैष्णव का दिया हुआ पूर्व मंत्र को त्याग देवे, फिर वैष्णव गुरु से विधिपूर्वक वैष्णवी मंत्र को ले लेवे । इत्यादि बहुत लिखा है सो विस्तार से वैष्णव-कुलभूषण तथा वैष्णवधर्मादिवाकर में लिखा है । और वैष्णव होकर यदि अन्य गुरु करे तो पतित है । वह गुरु चेला दोनों मर कर नरक में जाते हैं यथा भुशुण्डिरामायणे ।

राममंत्रं च ये लब्ध्वा गृह्णंत्यन्यन्तु ते पुनः । नरकान्न निवर्तन्ते यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १ ॥

राममंत्रं समादाय योन्यमंत्रं समिच्छति । गृहीत्वा प्राप्नुयात्पापं दाता च नरकं व्रजेत् ॥ २ ॥

अर्थात् श्रीलोमश ऋषि काकभुशुण्डिजी से कहते हैं कि जो श्रीराममंत्र को लेकर फिर अन्य मन्त्र को लेते हैं उनका नरक से उद्धार नहीं होता है जबतक चन्द्र सूर्य दोनों हैं भाव महाकल्प भर नरक में रहना परता है। श्रीराममन्त्र को लेकर जो फिर अन्य मन्त्र लेने की इच्छा करता है वह अन्य मन्त्र को लेकर पाप का भागी होता है और देनेवाला गुरु नरक में जाता है। इसी प्रकार से बहुत लिखा है। इससे श्रीराममन्त्रराज लेकर अन्य मंत्र नहीं लेना चाहिए। जो कोई लेता है सो पतित हो जाता है उसका मुख नहीं देखना धर्म है। (श्रीगुरु सेवा करना परम धर्म है) शास्त्र में लिखा है कि गुरु और ईश्वर दोनों एक ही हैं इनमें भेद मानना भारी पाप है। श्रीगुरुस्वामी को मनुष्य नहीं जाने। चाहे जैसा गुरु हो ईश्वर ही जानना चाहिए। शाण्डिल्यसंहितायाम्।

एवं गुरुरपि त्रिज्ञेयः क्रोधनो नृहरिः स्वयम् । लुब्धस्त्रिविक्रमो ज्ञेयो द्रोग्धा परशुभृत्स्वयम् ॥
ज्ञानदो व्यास एवासौ सत्यसन्धस्तु राघवः । विज्ञानदः कृष्ण एव नानालीलाकरः प्रभुः ।
भक्तिदो नारदः साक्षात्तपोनिष्ठो महामुनिः ॥ इत्येवं भावना तस्य शिष्यैः कार्य्या यथा यथा ॥

अर्थात् श्रीगुरुस्वामी को ऐसा जानना क्रोधी हों तो नरसिंहजी जानना। लोभी हों तो वामनजी। द्रोही हों तो स्वयं परशुराम जाने, ज्ञान के दनवाले हों तो वेदव्यास जाने, सत्यसन्ध हों तो श्रीरामजी, नाना लीला करनेवाले गुरु को सर्व शक्तिमान् ज्ञानदाता श्रीकृष्ण ही जाने, भक्ति देनेवाले नारद जाने, तपस्वी हों तो महामुनि जाने। ऐसी भावना शिष्य लोग श्रीगुरु में करे। और भी लिखा है कि गुरु आज्ञा करे। गुरुके देखादेखी न करे। विना आज्ञा न बैठे। पीठ देकर न बैठे। पैर न फैलावे। निंदा न करे। चंचलता न करे। निंदा न सुने, वचन न टारे। गुरुछाया

स्नान किया जल आसन पात्र चरणपादुका आदि न लांघे। गुरु महाराज का नित्य पूजन करे। नहीं तो चरणपादुका अथवा चरण चिह्न वस्त्र को पूजे। चरणोदक धोकर शुद्ध मृत्तिका में गोली बांध कर धर लेवे। उसीसे नित्य चरणोदक लिया करे। संत गुरु के चरणोदक भगवच्चरणोदक से प्रथम लेना चाहिए। श्रीगुरुस्वामी को साष्टांग करे।

सीतानाथसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम्। अस्मदाचार्य्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरंपराम्॥

यह श्लोक पढ़कर दण्डवत् करना चाहिए। और श्रीअग्रस्वामीजीवाली गुरुपरंपरा का सर्वदा पाठ करना चाहिए। संत चरणोदक लेना यथा।

गंगासागरसहस्राणि द्वारकाणां शतैरपि। एवं तीर्थादिकं पुण्यं सतां पादोदकं पिबेत्॥

अर्थात् एकसहस्र बार गंगासागर सौ बार द्वारकाजी ऐसेही सब तीर्थों में जाने का जो फल होता है सो सब फल संत का चरणोदक पीने से होता है कहांतक कहें विशेष देखना हो तो भक्तमाल देखो।

अब कुछ टकसार की व्यवस्था लिखते हैं। इस पर सब सज्जनों को अवश्य ध्यान देना चाहिए।

(टकसार क्या चीज़ है)

साधु साधु सब एक है जस पोस्ते की खेत। कोइ कुदरती लाल है और श्वेत का श्वेत॥

टकसार का अर्थ यही है कि जैसे टकसारघर में जितने रुपया और अशर्फियाँ छपती हैं। सब एकरंगरूप की होती हैं। उसी प्रकार से जितने संत हैं सब एकरंगढंग के होते हैं अर्थात् साधुओं की बोली चाली, रंग, रूप, खान, पान, रीति, भांति सब एकही नमूना की होती है। इसलिए हमारे वैष्णव साधुओं के सब बातों में टकसार की परीक्षा

होती है । वह टकसार प्रथम से अब बहुत कुछ बदल गई है । कितनी बातें तो ऐसी हैं जो कि प्रथम से बिलकुल छूट गई हैं । जैसे कि प्रथम जो साधु होते रहे, चाहे वह जिस देशके हों उनकी एक बोली होती रही । यह न जान परे कि यह संत अमुक (फलाने) देश के हैं । यहांतक रहा कि वचन मारके सोंटा मार के घर की बोली चाली छोड़ा कर टकसार सिखाते रहे । और न इस बात को कोई संत बुरा मानते रहे बड़े प्रेम से टकसार सीखते रहे । अबतो कुछ कहने से लड़ाई करने लगतेहैं और कहते हैं कि बड़े टकसारी बनते हैं । टकसार छांटने आए हैं । ऐसे २ कुवाक्य बोलने लगते हैं कि जिस से दुःख हो जाता है । इसी लिए अच्छे देशकाली संत अब कुछ नहीं बोलते हैं । और न इस बात की अब कोई खोज ही करते हैं । इसी से अब प्राचीन टकसार सब जाती रही । जिसको देखो वही घरकी बोली बोलते हैं । यहां तक कि चारों धाम घूम कर आते हैं तौ भी घर की बोली चाली रीति भांति नहीं छूटती है । प्रथम संत सब टकसारी खूब डब्बल जलपात्र रखते रहे । जिन के पास टकसारी डब्बल पात्र नहीं रहता रहा और घर गृहस्थी चाल का बे डौल छोटा जलपात्र रहता रहा उनको कुपात्र, घसल्ली कहकर अनेक वचन मारते रहे । यहांतक रहा कि जल्दी पंक्ति में भी नहीं बैठने देते रहे । अब यह बात बिलकुल नहीं है । जिनकी जैसी इच्छा होती है वह वैसाही जलपात्र रखते हैं । कोई कुछ नहीं कहते हैं । कच्छभुजी पित्तल का कमण्डलु प्रथम वैष्णव साधु कोई नहीं रखते रहे । केवल गोसाईं लोग रखते रहे । सो अब देखते हैं कि बहुत संत रखते हैं कोई कुछ नहीं कहते हैं । कोई २ मनमुखी संत नारियल का भी कमण्डलु रखते हैं । ऐसा अन्याय करते हैं । प्रथम जो तिलक नहीं लगाते रहे उनको संत सब वचन मारते रहे । जो केवल श्री अथवा बेंदी लगाते रहे अथवा मत्था थोपते रहे उनको भी वचन मारते रहे । अब तो बहुत आलसी संत तिलक भी नहीं लगाते हैं । कोई खाली श्री लगा ली कोई खाली बेंदी, कोई मत्था थोप लेते हैं । कोई

कुछ नहीं कहते हैं सो ठीक नहीं अवश्य कहना चाहिए। प्रथम संत सब अचला कोपीन लगाते रहे। अब बहुत से संत गृहस्थ बाबू की तरह धोती, कोट, कुर्ता, बूट लगाते और कहाते हैं कि हम साधु हैं। कोई कुछ नहीं कहते हैं। प्रथम संत सब किसी का जलपात्र, वस्त्र, आसन नहीं ग्रहण करते रहे। और न बिना आज्ञा आसन में हाथ लगाते रहे। जब एक प्रभाती की भी इच्छा होती रही तो विनयपूर्वक मांग लेते रहे। मिलने पर उपकार समझ कर दंडवत् कर लेते रहे। यदि कोई वस्तु संत देते रहे तो दंडवत् करके प्रेमपूर्वक लेते रहे। अब यह टकसार कमती हो गई है। जो चाहे सोई दूसरे का जलपात्र वस्त्रादि ले लेते हैं। प्रथम स्नान करके कोई किसी को छूते नहीं रहे। और न बिना स्नान किये आसन वस्त्रादि छूते रहे। स्नान करके दरी जाजिम आदि अशुद्ध वस्तु को नहीं छूते रहे। अब यह सब बातें स्वप्न हो गईं। प्रथम डोलडाल जाते समय और डोलडाल होकर तथा अमानियां करते समय दण्डवत् नहीं करते रहे। अब यह भी रीति जाती रही कुछ २ रह गई है। प्रथम संत सब धोबी को कपड़ा नहीं देते रहे। अब तो धुआ कपड़ा धोते भी नहीं झट लेकर पहिन लेते हैं। कोई कुछ नहीं कहते हैं। ऐसी दशा होगई है क्या करें। कोई महात्मा तो धोबी का धुआ वस्त्र ठाकुरजी को भी धारण करा देते हैं। प्रथम संत सब लँगोटी लगाकर भगवान् के और बड़े संत गुरु के सामने नहीं जाते रहे। अब यह भी नियम नहीं है। खाली लँगोटी लगाकर भगवान् के सम्मुख खड़े हो जाते हैं। मना करने पर दलील करते हैं कि माता पिता के सामने पुत्र को कुछ दोष नहीं है। प्रथम संत सब खाट पलंग पर नहीं सोते रहे अब तो सोते हैं। सो नहीं चाहिए खाट पर सोना विरक्तों को मना है। चौकी पर सोना अच्छा है। शास्त्र में लिखा है कि झाड़ू, खाट, पलंग, दीपक यह सब महा अशुद्ध हैं। बिना स्नान किए छूना चाहिए स्नान करके नहीं। यदि यह सब वस्तु भगवान् मंदिर की हो तो पवित्र है छूने में कोई दोष नहीं

किए छूना चाहिए स्नान करके नहीं। यदि यह सब वस्तु भगवान् मंदिर की हो तो पवित्र है छूने में कोई दोष नहीं

है। प्रथम संत सब दिन में नहीं सोते रहे अब तो सब सोते हैं। शास्त्र में लिखा है "दिवास्वप्नं परित्यजेत्" अर्थात् दिनको नहीं सोना चाहिए भारी दोष है। श्रीरामायण में श्रीभरतजी ने शपथ की है कि दिन में सोने से जो पाप होता है, वह पाप मेरे को लगे यदि श्रीरामजी को वन जाने में हमारी सम्मति हो। इस से दिन में सोना मना है।

प्रथम संत सब अपने ही हाथों से बर्तन चौका करते रहे अब तो बहुत जघे शूद्र कहार धानुक सब काम करते हैं। भला कैसे शुद्धता और आचार विचार रहेगा। प्रथम संत सब अचला लँगोटा छोड़कर और सूती वस्त्र नहीं रखते रहे। अब तो कोट, कुर्ता, दरी, जाजिम सब रखते हैं। और उसी अशुद्ध कपड़ों के आसन लगाते हैं कोई कुछ नहीं कहते हैं प्रथम संत सब अमनियां और रसोई में बोलते नहीं रहे। मुख में कपड़ा बांधकर काम करते रहे। अब यह बात देखने में भी नहीं आती है। प्रथम खन्ती से खोद कर शुद्धमृत्तिका से हाथ पैर शुद्ध करते रहे। खराब मृत्तिका छूते भी नहीं रहे। और न डोलडाल होकर बायें हाथ से डोरी, खंती छूते रहे। अब तो अशुद्ध हाथ से डोरी आदि सब छू लेते हैं। जहां पाते हैं वहीं से मृत्तिका लेकर हाथ पैर बर्तन भांड़ा शुद्ध कर लेते हैं। ज़रा भी घृणा नहीं आती है। प्रथम पश्चिम दक्षिण मुख होकर कोई संत प्रभाती नहीं करते रहे। अब तो कोई २ संत छोड़कर बाकी सब जिधर पाते हैं उधर ही बैठ कर कर लेते हैं। प्रथम संत सब अवैष्णवों के बनाए पक्की रसोई भी नहीं पाते रहे। अब तो कोई २ छिप कर कच्ची भी पाते हैं। जब कहीं गृहस्थों के यहां रसोई होती रही तब अपने बर्तनों में अपने हाथों से जल भर कर रसोई करते रहे। वही भोग लगाते रहे। अब तो अवैष्णव गृहस्थ लोग शूद्रों के हाथ से अपने महा अशुद्ध पंचायती बर्तनों में अवैष्णवों से रसोई कराते हैं वही भोग लगाकर सब पाते हैं। बहुत भोग भी नहीं लगती है सब पा लेते हैं। मन में ज़रा भी ग्लानि नहीं होती है अब तो बहुत स्थानों में अवैष्णव ब्राह्मण रसोई पूजा करते हैं।

सो नहीं चाहिए। यदि पूछे तो कहते हैं कि साधु नहीं रहते हैं। इसी प्रकार से बहुत बात पूर्व की बदल गई है कहांतक कहें। सब सज्जनों से विनयपूर्वक प्रार्थना है कि जो जो बातें बदल गई हैं उन बातों को फिर से कृपा करके सुधार लीजिए। क्योंकि वैष्णव धर्म बहुत ही पवित्र है।

ऐसेही हाथ जोड़ कर एक बिनती और है कि हमारे में बिना जाने बूझे बहुत से संत लोग योगवाशिष्ठ ग्रंथ को पढ़ते हैं सो नहीं पढ़ना चाहिए। योगवाशिष्ठ अद्वैतवादी संन्यासी का बनाया है। इस ग्रंथ में श्रीरामजी को जीव कह कर उपदेश किया है। महा झूठा ग्रंथ है किसी पाखण्डी ने बनाकर वैष्णवों को धोखा देने के वास्ते श्रीवाशिष्ठजी का नाम धर दिया है। इस ग्रंथ के देखने से भगवद्द्रोही होना परेगा। इस लिए अवश्य छोड़ दीजिए।

और एक बिनती यह भी है कि भूल करना मनुष्यों का धर्म ही है। जो कुछ भूल चूक हुआ हो तो कृपा करके क्षमा कीजिएगा। इस रामपटल में जो कुछ कहागया है सब ध्यान देकर विचार कीजिए।

विशेष सूचना।

कुछ दिनों से हमारे संत सब तोताद्रि को अपनी गादी समझकर वहां जाते रहे। और यह भी जानते रहे कि तोताद्रि गादी को श्रीरामानुज स्वामी ने स्थापित किया है सो सब भूल है। तोताद्रि गादी को तो श्रीवर वर मुनि ने स्थापित किया है। जिन्हों ने श्रीवचनभूषण में श्रीराम कृष्णादि मंत्रों की घोर निन्दा की है। यह श्री वर वर मुनि जी श्री रामानुज स्वामी की ८ पीढ़ी पीछे हुए हैं। फिर तोताद्रि गादी को श्रीरामानुज स्वामी ने स्थापित किया है। ऐसा मानकर तोताद्रि जाना और भेंट धरकर साष्टांग करना भारी भूल रही। अब सज्जनों से बिनती है

कि तीर्थ बुद्धि समझकर जाना दूसरी बात है। पर गादी समझकर जाना, भेट पूजा करना और प्रसाद पाना यह सब अब छोड़ देना चाहिए।

इति ॥

नोट—इस टीका में जिन जिन ग्रन्थों के नाम लिए गए हैं, वेदार्थ प्रकाश रामायण, उपासना त्रय सिद्धान्त, वैष्णव कुलभूषणसार संग्रह, वैष्णव धर्म दिवाकर, कलिपाखण्डोदय, श्री राम कृष्ण लीलानुकरण एवम् साकेतसुषमा और श्रीराम मंत्र परम वैदिक सिद्धांत वे वैष्णवों के लिए उपयोगी और अवलोकनीय हैं।

मिलने का पता—
छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बुकसेलर,
श्रीअयोध्या।

पुस्तकमिदं राजाकिशोर दासस्य
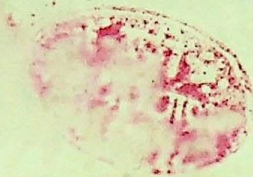
पुस्तक लौटाने की तिथि अन्त में अङ्कित है। इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर दस नये पैसे प्रति पुस्तक अतिरिक्त दिनों का अर्थदण्ड लगेगा।

१०००).६.५६।